गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पु॰ 1903

॥ ओ३म् ॥

# प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

इस ग्रन्थ का नाम मै आख्यायिका रख नहीं सकता और न अपने में ग्रन्थकर्त्ता बनने की योग्यता समझता हूँ। आगे के पृष्ठों में पाठकों के लिए भाषा के लालित्य तथा विचारों के पांडित्य को खोजना एक निष्फल परिश्रम होगा। मैं शुष्क ऐतिहासिक होने का भी अभिमान नहीं कर सकता क्योंकि इस जीवन के साथ मेरा ज्वलन्त सम्बन्ध रह चुका है और जो घटनायें स्मरण करने पर अब भी जागृत अवस्था में मेरे सामने ज्यों की त्यों खड़ी हो जाती हैं उनका वर्णन करते हुए तीव्र से तीव्र तर्क भी परास्त हो जाता है।

इसलिए इस पुस्तक को एक पवित्र जीवन के चरणों में कृतज्ञता की भेंट-मात्र समझिये।

उपर्युक्त कृतज्ञता का ऋण चुकाने में इतना बिलम्ब हो गया था कि मुझे इस पुस्तक को बहुत ही अल्प समय में समाप्त करना पड़ा। इस कारण न केवल यही कि बहुत से प्रूफ स्वयं नहीं देख सका जिससे छापे की अशुद्धियाँ रह गई। प्रत्युत बहुत सी एक ही प्रकार की घटनाओं में से यह निश्चय करने का कार्य भी कठिन हो गया कि किनको स्थान दिया जाय और किनको किसी आने वाले समय के लिए रख छोड़ा जाय। मैं इन विविध त्रुटियों के लिए केवल यही आशा कर सकता हूँ कि धर्मवीर लेखराम के जीवन से जो शिक्षा मिलती है, उसका उज्जवल प्रकाश इन त्रुटियों की ओर कोई दृष्टि ही न जाने देगा। यदि इस ग्रन्थ की द्वितीया-वृत्ति की आवश्यकता हुई तो इन तथा अन्य त्रुटियों को दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

अन्त में मैं आर्यपथिक के चाचा श्री गण्डाराम जी, उनके पुराने उस्ताद मंशी तुलसीदास जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के अधिकारी गण तथा अन्यान्य आर्य-भाइयों को धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने पण्डित लेखराम के जीवन सम्बन्धी पत्र-व्यवहार तथा अन्य लेख मेरे हवाले करने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

गुरुकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी
५ मार्गशीर्ष, १९७१ वि०

{ मुन्शीराम जिज्ञासु

# द्वितीय संस्करण की भूमिका

आर्य पथिक लेखराम को धर्म पर बलिदान हुए २० वर्ष व्यतीत हो चुके उनका जीवन-वृत्तान्त छपे भी १० वर्ष हो लिए । इस दीर्घकाल में कितने ही आर्य पथिक बने और काल-चक्र में पड़कर चल बसे, परन्तु जो निरालापन लेखराम के लेखों में था जिस प्रकार धर्म सेवा में वह मस्त रहते थे और जो प्रवाह वह अपने कट्टर शत्रुओं तक पर डालने में कृतकार्य होते थे, उसका दूसरा एक दृष्टान्त नहीं दिखाई दिया ।

यह सच है कि जिन ऐतिहासिक रत्नों को, साहित्य के समुद्रों में गहरा गोता लगाकर पण्डित लेखराम ने निकाला था वह आजकल आर्य समाज के सभासदों को साधारण दिखाई देते हैं, परन्तु जिस समय उनको लेखराम ने प्रकाशित किया वह समय विचित्र था । एक लम्बे पुरुष के कन्धे पर चढ़कर एक बौने के लिए यह कहना आसान है कि मैं उसकी दृष्टि से भी आगे देख सकता हूँ । यदि देव पीछे नर मूर्ख को कन्धे से उतार दे तो फिर उसकी नजर कहाँ तक दौड़ सकती है ।

मुझे आशा थी जिन पुस्तकों का साँचा आर्यपथिक बना गये थे उनकी पूर्ति के लिए कुछ अरबी फारसी के विद्वान आगे निकलेंगे परन्तु शोक है कि अब तक आर्यपथिक के ग्रन्थों का पूरा हिन्दी अनुवाद भी छप कर प्रकाशित नहीं हुआ । परन्तु अब फिर आशा बन्धती है । जो लेख का काम लेखराम ने आरम्भ किया था उसकी पूर्ति के लिए कुछ विद्वान् अवश्य मैदान में आयेंगे ।

दिल्ली
५, मार्गशीर्ष सम्वत् १९८१ वि०
(१० नवम्बर १९२४)

श्रद्धानन्द संन्यासी

# कुछ शब्द

मार्च सन् १८९७ में आर्य पथिक लेखराम एक धर्मान्ध मुसलमान के छुरे से शहीद हुए। ऋषि दयानन्द के पश्चात् आर्य समाज की बलिवेदी पर यह पहिला बलिदान था। जिसने न केवल पं० लेखराम को अमर शहीद बना दिया, प्रत्युत आर्यसमाज में भी नवजीवन का संचार कर दिया। निस्संदेह यह उनके तप त्याग और बलिदान का पुण्य परिणाम था कि उनके पश्चात् आर्यसमाज के लिए बलिदानों की झड़ी लग गई। पंडित तुलसीराम, वीर रामचन्द्र, स्वामी श्रद्धानन्द, महाशय राजपाल आदि अनेक हुतात्मा तो उनकी तरह शहादत का जाम पी गये और उनके काल के अन्य अनेक धर्मवीर जीवनदान देकर जीवन पर्यन्त आर्यसमाज के लिए मरते रहे। फलस्वरूप आर्यसमाज का आकर्षण बढ़ने लगा और एक दुनिया उसकी छत्रछाया में आ गई।

किन्तु मानना चाहिए कि सबके सब दिन एक समान नहीं रहते। कालचक्र के साथ आर्यसमाज की स्थिति भी बदलती गई। निश्चय ही हमारे माननीय पाठक हमें इस कटु सत्य के लिए क्षमा करेंगे कि अब न तो हम में पंडित लेखराम का सा वह अदम्य उत्साह है और न प्रातः स्मरणीय स्वामी श्रद्धानन्द जी की सी असीम श्रद्धा। इसी प्रकार वैदिक मुनि पंडित गुरुदत्त जी की धर्म परायणता और त्यागमूर्ति महात्मा हन्सराज जी की निष्काम सेवा की बातें आज हमें सपने की सी बातें लगती है। इसी कारण आज हमने लगभग ६६ वर्ष के पश्चात् धर्मवीर आर्य पथिक पंडित लेखराम की अमर कहानी को पुनः अपने आर्यजनों के सम्मुख रखने की आवश्यकता अनुभव की है। क्योंकि हो सकता है कि उनके जीवन दर्पण में हमें अपने वास्तविक रूप के दर्शन हो जायें और हम एक बार पुनः आर्यसमाज के बीते दिनों को वापिस लाने में सफल हो सकें।

प्रस्तुत पुस्तक की उपादेयता के सम्बन्ध में हम इससे अधिक कुछ नहीं कहना चाहते कि यह एक महापुरुष की दूसरे महापुरुष के प्रति श्रद्धांजलि है। वे दोनों आपस में धर्म भाई थे। एक छोटा और एक बड़ा। इसलिए लिखने वाले ने जो कुछ भी लिखा है वह सब

उनका आँखों देखा है और कहीं भी उन्होंने कोरी कल्पना से काम नहीं लिया।

कहने की आवश्यकता नहीं कि इस पुस्तक का पहला संस्करण सन् १९१४ में और दूसरा १९२४ में छपा था। यह तीसरा संस्करण है जो आपके हाथों में है। पहले दो संस्करणों के प्रकाशन का श्रेय मेसर्ज गोविन्दराम हासानन्द को है। तीसरे संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर भी हम उनका हार्दिक धन्यवाद किये बिना नहीं रह सकते क्योंकि मूल पुस्तक के प्रथम जन्मदाता वही हैं।

चूंकि प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन की प्रथम प्रेरणा हमें श्रद्धेय आचार्य भगवान्देव जी से मिली है इसीलिए हम उनके भी अत्यन्त आभारी हैं। अन्त में हम अपने भाई श्री भारतेन्द्रनाथ जी साहित्यालङ्कार का धन्यवाद करते हैं कि जिनके निरन्तर परिश्रम से इस पुस्तक को यह सुन्दर तथा आकर्षक आकार मिला है।

हमें पूर्ण आशा है कि आर्यभाई इस पुस्तक को शीघ्र ही हाथों हाथ पहुंचाने का पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

| | |
|---|---|
| गुरुदत्त भवन | विनीत :- |
| जालन्धर | रामचन्द्र जावेद |
| २६ अप्रैल ६३ | अधिष्ठाता |

# वंश

आर्य समाज के परिमित चक्र में तो कोई ही ऐसा बेपरवा आलसी होगा जो आर्यपथिक के नाम तथा काम से परिचित न हो, किन्तु आर्य समाज से बाहिर भी करोड़ों मनुष्यों ने लेखराम का नाम सुना है। वीर लेखराम के जीवन की अन्तिम घटना यदि ऐसी क्षुब्ध न होती तो सम्भव था कि उनकी अर्थी के साथ ३० सहस्र के स्थान में तीन सहस्र जनसंख्या भी न होती, ऐसी अवस्था में सम्भव है कि आर्य समाज की परिधि से बाहर उसको जानने वाले भी कम होते, किन्तु फिर भी उसके जीवन में ऐसी विचित्र घटनाओं का प्रादुर्भाव हुआ है जिनसे उसका जीवन वृत्तान्त सर्वसाधारण के लाभार्थ प्रकाशित करने की आवश्यकता होती है।

जन्मभूमि को जननी कहना कुछ अनुचित नहीं क्योंकि जिस प्रकार गर्भ में स्थित सन्तान पर माता के गुण, कर्म तथा स्वभाव के संस्कार पड़ते हैं वैसे ही जन्मभूमि के जल, वायु तथा प्राकृतिक दृश्यों का भी आश्चर्यजनक प्रभाव मनुष्य के जीवन पर पड़ता है। लेखराम का जन्म एक ऐसे स्थान पर हुआ जहां का जलवायु पुष्टिकारक तथा जहां के बाह्य दृश्य मन को उत्साहित करने वाले थे। पंजाब में जेहलम का जिला जानदार घोड़ियां उत्पन्न करने वाले धन्नी प्रान्त की वली हद्द पर स्थित है, उस में चकवाल की तहसील प्रसिद्ध है। खास चकवाल उपनगर से आठ कोस पूर्व की ओर ऊँची सतह पर सैदपुर (सय्यदपुर) नामी एक ग्राम है। इस ग्राम के तीनों ओर कस अर्थात् बरसाती नदिया बहती हैं। ग्राम की पूर्वी सीमा वाली नदी का नाम काशी है। इस नदी का स्रोत रामहलावां नामी पहाड़ी से आरम्भ होता है, जिसके विषय में प्रसिद्ध लोकोक्ति है कि वनवास के समय पाण्डव कुछ काल तक इस स्थान में खेती करके दिन बिताते रहे। रामहलावां पहाड़ी हिन्दुओं के प्रसिद्ध तीर्थ कटाक्षराज के पास ही है, इसी कारण नदी का नाम काशी पड़ा होगा। दूसरी नदी का नाम सुर है जिसे पण्डित लेखराम जी 'सरस्वती' का अपभ्रंश बतलाया करते थे। इस नदी का स्रोत 'करङ्गली' की नामी पहाड़ी से निकलता है और सय्यदपुर के दो ओर होता हुआ काशी से जा मिलता है। दक्षिण और पूरब के कोने की

और 'दल जब्बा' है। इस ग्राम की आबादी ३०० घरों से अधिक न थी, किन्तु ग्रामवानिवासी प्रायः खाते-पीते खुशहाल थे। सिक्खों के राज्य में इस ग्राम की ऊंचाई पर एक पहाड़ी गढ़ था। जिसे सरदार उत्तमसिंह अहलूवालिया ने बनवायी था। उस गढ़ के एक दो बुर्जों के अब चिन्ह मात्र ही शेष रह गया है, बाकी सब कुछ बरसाती नदियों की भेंट हो चुका है।

यद्यपि पण्डित लेखराम का जन्म सय्यदपुर में हुआ तथापि उनका वंश पहले पोठोवार का निवासी था। रावलपिण्डी का जिला पोठोवार का गढ़ है, उसके कहूटा नामी ग्राम में लेखराम के पुरखा निवास करते थे। कहूटा भी प्राकृतिक दृश्यों से शून्य स्थान नहीं है किन्तु उसका वर्णन इस समय करने की आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना लिखना ही पर्याप्त है कि लेखराम के दादा महता नारायणसिंह के पिता पलहे-पहल पोठोवार से अपने ससुराल के ग्राम सय्यदपुर में आ बसे थे। उनके दो पुत्र थे जिनमें एक नारायण सिंह थे। नारायणसिंह के दो पुत्र उत्पन्न हुए, बड़े का नाम महता तारासिंह और छोटे का नाम महता गण्डाराम, जो पेशावर पुलिस में डिप्टी इन्सपेक्टर थे और अब पेन्शन लेकर रावलपिण्डी में निवास करते है। बड़े भ्राता तारासिंह के घर एक पुत्री तथा तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे बड़े का नाम लेखराम, दूसरे का तोताराम और तीसरे का बालकराम रखा गया। पुत्री सबसे छोटी थी जिसका नाम मायावन्ती रखा गया। लेखराम वर्तमान जाति भेद विचार से ब्राह्मण थे। इतना लिखना ही काफी है, इससे अधिक आन्दोलन की इस समय, जबकि वैदिक वर्ण व्यवस्था के पुनर्जीवित करने का विचार हो रहा है और कुछ भी आवश्यकता नहीं, फिर भी इस विषय का विशेष वृत्त मनोरंजक होगा।

लेखराम के प्रपितामह का नाम 'प्रधान' था। यह शाण्डिल्य गोत्रज सारस्वत ब्राह्मण कुल में से एक साधारण पुरुष थे। इनके विषय में कुछ विशेष हाल मालूम नहीं हुए परन्तु आर्यपथिक के दादा नारायणसिंह के जीवन पर एक दृष्टि अवश्य डालने की आवश्यकता है, क्योंकि लेखराम के जीवन में बहुत सी घटनाएं ऐसी उपस्थित हुई है जिनका गुह्य रहस्य पैत्रिक संस्कारों के ज्ञान के बिना प्रकाशित नहीं किया जा सकता। नारायण के साथ सिंह का योग ही सिद्ध करता है कि परशुराम की तरह यह भी हर समय कहने को तैयार रहते थे कि - 'केवल द्विज कर जानेस मोहीं। मैं जस विप्र सुनावहुँ तोहीं।' हम ऊपर लिख चुके हैं कि सय्यदपुर में सरदार उत्तमसिंह ने सबसे पहले गढ़ बनाया था। उनके पश्चात् यहाँ के हाकिम सरदार कान्हसिंह मजीठिया हुए, जिनके यहाँ नारायणसिंह ने घुड़चढ़ों (सवारों) में नौकरी कर ली।' नारायणसिंह बड़े दृढ़ पुरुष थे। उनका शरीर बलिष्ठ तथा हाथ पैर खुले थे। उनकी बहादुरी के

पुरुष थे । उनका शरीर बलिष्ठ तथा हाथ पैर खुले थे । उनकी बहादुरी के कारण सरदार कान्हसिंह इन्हें बहुत माननीय समझते थे और भोजन प्रायः अपने साथ ही कराया करते थे । पेशावर में एक बार सरदार कान्हसिंह के साथ पठानों के सामने युद्ध में खड़े हुए थे, वहाँ, इनको बड़ा प्रबल घाव लगा । बन्दूक की गोली मुँह में लगकर दाहिने काम के पास से होती हुई गर्दन में से बाहर निकल गई, किन्तु बहादुर नारायणसिंह ने मुंह पर मलिनता तक न आने दी । जब निरोग हुए तो सरदार ने सोने के कड़ों की जोड़ी देकर उनका मान किया । इसके पश्चात् भी कई लड़ाइयों में हाथ दिखाकर इन्होंने सिक्खों की नौकरी छोड़ दी । इनके जीवन की एक और विचित्र घटना यहाँ वर्णन के योग्य है कि जब ब्रिटिश राज्य शासन के स्थापन होने पर प्रजा से हथियार ले लिए गये तो नारायणसिंह ने अपने हाथ से हथियार रखने को अपमान समझा और 'पुच्छ' के राज्य में जाकर अपने हथियारों को स्वयं बेच दिया । हम आगे चलकर लेखराम के जीवन में अपने पितामह के दृढ़ संकल्पों का प्रभाव देखेंगे । अपने बड़े पुत्र तारासिंह के विवाह के पश्चात्, जो संवत् १९९२ में हुआ, नारायण सिंह काश्मीर के सरदार हाड़ासिंह जी के यहाँ कोठारी नियत होकर चले गये और वहाँ से लौटकर उनका देहान्त संवत् १९२५ में सय्यदपुर ग्राम के अन्दर हुआ ।

नारायण सिंह के छोटे भाई श्यामसिंह थे । यह बाल ब्रह्मचारी ही रहे और सिक्खों के राज्य की समाप्ति पर साधु होकर विचरते रहे । इनका देहान्त संवत् १९२८ विक्रमी में हुआ, तब लेखराम कुमारावस्था से आगे पग धरने लगे थे और यदि हम यह अनुमान करें, कि लेखराम के आगामी धार्मिक जीवन पर इनके दृष्टान्त का कुछ प्रभाव पड़ा तो कुछ अनुचित न होगा ।

# जन्म तथा बाल्यावस्था

लेखराम का जन्म ८ चैत्र सं० १९१५ वि० को शुक्र के दिन सय्यदपुर ग्राम में हुआ। छः वर्ष की आयु में ही इसको देहाती मदरसे में उर्दू-फारसी पढ़ने के लिए भेजा गया। पंजाब मे चिरकाल से फारसी का राज्य हो चुका था। खालसा पन्थ के राज शासन से पहिले लाहौर मुसलमान राजप्रतिनिधियों का गढ़ था। कई समयों में दिल्ली के बादशाह स्वयं लाहौर में निवास किया करते थे। न्यायालयों का सब काम हिन्दू राजकर्मचारी भी फारसी में ही किया करते थे। देवनागरी अक्षरों का किञ्चिन्मात्र भी प्रचार न था, और होता कैसे जब सरकारी नौकरी से बढ़कर कोई मान का स्थान ही न समझा जाता था और सरकारी नौकरी में उन्नति प्राप्त करने के लिए आवश्यक था कि फारसी भाषा में उत्तम योग्यता सम्पादन की जावे। उन दिनों ५ रु० मासिक पाने वाला घाट का मुहर्रिर भी अपने आपको 'अहले कलम' कहकर उपज की लेता था और लाखोंपति साहूकारों तथा सैकड़ों की मालगुजारी भुगताने वाले जमींदारों को अपनी प्रजा समझता था। ऐसे समय में एक ब्राह्मण-कुलोत्पन्न बालक के लिए भी देवनागरी लिपि सिखाने और संस्कृत भाषा पढ़ाने का विचार किसके दिल में उत्पन्न हो सकता था ? किन्तु फिर भी मालूम होता है कि लेखराम के हृदय में अपने धर्म के दृढ़ संस्कार छुटपन से स्थिर हो चुके थे। अपने धर्म की कथाएं उन्होंने कहां से सुनीं और उनपर दृढ़ता कैसे हुई, इसका कुछ पता नहीं चलता किन्तु यह स्पष्ट है कि लेखराम के चित्त पर धार्मिक घटनाओं का प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ा करता था।

अभी अक्षराभ्यास ही हुआ था कि शिक्षा-विभाग का चीफ मुहर्रिर परीक्षा लेने को आया और लेखराम की हाजिर जवाबी से ऐसा प्रसन्न हुआ कि उसे विशेष पारितोषिक का पात्र समझा। सं० १९२६ में, जब लेखराम की आयु ११ वर्ष की थी, उसके चचा गण्डाराम पेशावर पुलिस में एक स्थिर स्थान पर नियत हो गये और उन्होंने लेखराम को अपने पास बुला लिया। इस स्थान में लेखराम को कई अध्यापकों के पास पढ़ने के लिए जाना पड़ा। अध्यापक यतः मुसलमान होते थे इसलिए मुसलमानी मत के अनुसार संस्कार लड़के के दिल पर बैठाने का प्रयत्न करते थे, परन्तु लेखराम की शंकाओं से इतने तंग आ जाते थे कि पढ़ाने से जवाब देकर चल देते। फिर लेखराम के चाचा पेशावर से बाहिर के थानों में बदल गये, लेखराम भी उनके साथ गया। इस समय की

एक घटना लेखराम के भविष्यत् जीवन का परिचय देती है। अपनी चाची को एकादशी का व्रत बड़ी श्रद्धा से रखते देखकर आपने भी उपवास करने का दृढ़ संकल्प कर लिया। चाची ने यह कहकर समझाया कि बच्चे भूख को सहन नहीं कर सकते, हठ को छोड़ देना चाहिए। दृढ़-संकल्प लेखराम ने एक न मानी और नियम पूर्वक एकादशी के दिन उपवास करना आरम्भ कर दिया। जिनके पैतृक संस्कार ऐसे दृढ़ हों, उनको उत्तम शिक्षा किस उच्च अवस्था पर पहुंचा सकती है इसके सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं है।

इस समय जब मनुष्य शिक्षा संबंधी आन्दोलन में दिनों-दिन उन्नति हो रही है और जबकि शताब्दियों के पक्षपात छिन्न-भिन्न करके यूरोपियन शिक्षक आर्यों की प्राचीन विद्या से उपदेश ग्रहण करने में भी अपनी कुछ हतक नहीं समझते, यह कल्पना करना कठिन है कि आज से ३४ वर्ष पहिले पंजाब देश में सारी शिक्षा की समाप्ति कुछ फारसी के लिखे हुए पत्रों के साथ ही हो जाती थी। लेखराम को शारीरिक शिक्षा, वर्तमान सरकारी शिक्षा विभाग के कृत्रिम नियमानुसार, कुछ मिली या नहीं इसका पता लगाना कठिन है, किन्तु उनका चौड़ा माथा, उनका खुला विशाल सीना, उनकी सिंह ठवन इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण थी कि ईश्वरीय नियमों की गोद में पले हुए बच्चों की शारीरिक अवस्था वैसी ही स्वाभाविक होती है जैसे कि ईश्वर के ज्ञान, बल और क्रिया स्वाभाविक हैं। लेखराम को मानसिक शिक्षा क्या मिली ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए बड़े आन्दोलन की आवश्यकता नहीं। अपने चाचा महाशय गण्डाराम जी से पास यह चौदह वर्ष की आयु तक रहे, उसके पश्चात् सय्यदपुर चले गये और वहां के देहाती मदरसे में शिक्षा लाभ करने लगे। इस देहाती मदरसे ने मुख्याध्यापक मुंशी तुलसीदास थे। लेखराम ने जो कुछ भी किताबी तालीम हासिल की वह इन्हीं की बदौलत थी, मुंशी तुलसीदास पुराने ढर्रे के स्वतंत्र विचार वाले आदमी थे। इनका स्वभाव मस्त फकीरों का सा था, किन्तु साथ ही हृदय बड़ा ही पसीजने वाला और दूसरों के दुःख को अनुभव करने वाला था। मुंशी तुलसीदास आदमी को पहचानने की शक्ति रखते थे। कवि ने सच कहा है :—

'आदमी - आदमी अन्तर, कोई हीरा कोई कङ्कर'-किन्तु यह पता लगाना, कि हीरा कौन है और कङ्कर कौन, साधारण पुरुषों का काम नहीं।

किसी पुरुष विशेष की मानसिक उन्नति का पता लगाने के लिए उसकी लड़कपन की अवस्था के निरीक्षण करने वालों की सम्मति बहुत सहायता देती है। जहां लेखराम के प्रथम चौदह वर्ष के जीवन का ठीक वृत्तान्त उनके चाचा महाशय गण्डाराम के लेखों से मिलता है, वहां उसके पश्चात् उनके शिक्षण संबंधी जीवन तथा उनके मानसिक विकास का पता चकवाल निवउमरा खत्री वंशीय मुंशी तुलसीराम के लेखों से लगता है। मुंशी तुलसीदास का महाशय गण्डाराम के

साथ बराबर पत्र-व्यवहार था। उनके पत्रों से लेखराम के विस्तृत होते हुए गुण, कर्म, स्वभाव का ठीक पता लगता है। किन्तु उन पत्रों में से लेखराम के जीवन संबंधी लेखों को उद्धृत करने से पहिले मैं मुंशी तुलसीदास का उस समय का लेख इस स्थान में नकल करता हूं जो लेखराम के महान् आत्म-समर्पण का समाचार सुनकर उन्होंने मुद्रणार्थ भेजा था। वह लिखते है :—

'स्वर्गवासी पण्डित जी अपने दोनों छोटे भाईयों (तोताराम और बालकराम) सहित मेरे पास तालीम पाते रहे। धर्म पर शहीद होने वाले पंडित जी का कद दर्मियाना, सांवला रंग, कुशादा (खुली) पेशानी, सियाह चश्म (पीछे एक आंख में कुछ विकार सा बैठ गया था) हंसमुख थे। उस समय उनकी आयु १४ या १५ वर्ष की होगी। बड़े सरल हृदय थे। कुरते की घुण्डी खुली है तो वैसी ही रही, पगड़ी का लड़ गले में है तो कुछ परवाह नहीं, किन्तु स्वभाव ऐसा तीक्ष्ण और स्मरण शक्ति ऐसी पहुंचने वाली कि कठिन फारसी के पाठ को दोबारा उन्होंने कभी नहीं कहा था। जो पूछों नोकजबान होता था। हिसाब में यकता, कसम-ए-हिन्द (भारत का इतिहास) उपस्थित इत्यादि। केवल गुलिस्तां पूरे बाब आठ और बोस्तान पूरे दस बाब नियमपूर्वकपंडित साहिब ने मुझसे बातकीब पढ़े। फिर बहारदानिश आधा से अधिक कुछ सिकन्दरनामा, और मुन्तखबात-ए-फारसी, जिसमें अनवार सुहेली सिकन्दरनामा, शाहनामा का कुछ इन्तखाब था। मगर इन किताबों की शिक्षा में यह हाल था कि दो-दो पन्ने उलटने पर शायद ही कभी कोई शब्द मुझसे पूछा हो, खुद ही उनकी सैर में किश्तीबर आब की तरह तैरते जाते थे' मुंशी तुलसीदास जी के पत्र व्यवहार से कुछ लेख तिथिवार उद्धृत करना इस स्थान में बड़ा उपयोगी होगा। 'चिरंजीव लेखराम रात के दस बजे तक गेरी कुटिया में रहता है। बहार दानिश में नजर सानी (पुरनावृत्ति) करता है। इस मदरसे में अपना सानी (बराबरी का) नहीं रखता। बर्खुरदार है' १६ फरवरी सं० १८७३ ई० - लेखराम मानीटर हो गया।'

१०. अगस्त १८७३ ई०। 'मुशीं लेखराम मानीटर साहेब काम का तो नाम भी नहीं लेते, पढ़ाई का क्या जिक्र। अपनी जहूलत के शगल (कविता से मतलब है·) से फुरसत नहीं पाते। खैर अब पहिले की निसबत कुछ सुधार पर आ गये हैं।'

८ सितम्बर १८७३ ई०। 'मुंशी साहेब लेखराम अब तक अपनी जिहालत पर कमर बस्ता हैं। और तो सब कुछ रखते हैं मगर अकल (बुद्धि)। हाय अफसोस ! अगर यह भी होता तो अन्दर बाहर आदमी होते।'

लेखराम के संबंधी फकीरचन्द भी मुंशी तुलसीदास के पास ही पढ़ते थे। उनकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए १८ फरवरी सन् १८७४ को उक्त मुंशीजी ने लिखा था - 'लेखराम साहेब भी लेख तथा वक्तृत्व शक्ति में उनसे

कम नहीं किन्तु तनिक बुद्धि की कसर है ।' यह बार-बार बुद्धि की कसर का जिक्र क्यों आता है और इससे अध्यापक का क्या मतलब है ? आगे चलकर कुछ स्पष्ट हो जाता है ।

२४ अगस्त सं० १८७४ - 'लेखराम की प्रकृति के बदलने की ओर ध्यान दीजिएगा । विद्या से विनय उत्तम है और अकल शकल से.....' लेखराम की प्रकृति में दास भाव पहले से ही न था, स्वतंत्रता कूट-कूट कर बाल-बाल में भरी हुई थी । यही कारण था कि कई बार छात्रवृत्ति तथा पारितोषिक पाने पर भी वह कभी-कभी सरकारी शिक्षा - विभाग के बड़े कर्मचारियों को भी अप्रसन्न कर लिया करते थे ।

इस समय से पहले ही लेखराम को कुछ तुकबन्दी का भी शौक हो चला था और फारसी तथा उर्दू के अतिरिक्त आप पंजाबी में भी तबियत लड़ाया करते थे । यद्यपि एक महाशय के लेख से ज्ञात होता है कि रिजाबी श्रृंगार की कविता की ओर लेखराम के दिल का झुकाव था परन्तु मुझे उनकी उस समय की लिखी हुई एक ही कविता मिली है, जिसका सदाचार के साथ संबंध है । आपने पंजाबी वैतुलबादी हुक्के के विरुद्ध की है जो कवि के बल तथा निर्बलता दोनों का प्रकाश करती है ।

'वे बाझ हुक्क नहीं चीज भैड़ा
लख बदियांदा इबदता हुक्का ।
खझ गर्मी ते सौदासाह
चारों रोग करे बरपा हुक्का ।
जुड्डा चक्खना चंगयां मन्दयां दा
कोई फायदा चादसाला हुक्का ।
शूम धूम वाझण चिलमकश जित्थे
बैठ करे ताजा जिस जा हुक्का ।
गहर बाझ स्याही स्याह करे
स्याही यही मुंहदे उत्तेमला हुक्का ।
बू बदतर है बांग बौल थी भी
बोल बोललछड्डे सीना खा हुक्का ।
नेकमाश नू हुक्का बदनाम करदा
बाब नेकदे बुरा कमा हुक्का ।
एह ऐब मैंने दिते गिन सारे
कोई फायदा नहीं बस बसाय हुक्का ।
लेखराम बस बैठके नाम जपलो
नहीं भन्नके देओ उड़ाय हुक्का ।'

# नौकरी

लेखराम के परिवार में चिरकाल से उच्च शिक्षा प्राप्त करने की प्रणाली प्रचलित न थी । इनके दादा तो सर्वथा अशिक्षित ही थे, हां इनके चाचा गण्डाराम जी ने कुछ फारसी उर्दू में अभ्यास किया था, जिसके अनुकरण में उन्होंने भी इन्हीं भाषाओं का अच्छा अभ्यास कर लिया । किन्तु समय के प्रचलित विचारों के अनुसार सत्रह (१७) वर्ष की आयु वाले युवक का कर्तव्य था कि वह कमाई करते माता-पिता को आर्थिक सहायता देवे, इसलिए इस आयु से पहले ही इनको सरकारी नौकरी दिलाने की फिक्र हो रही थी । उस समय 'निकृष्ट चाकरी' को ही अत्युत्तम तथा मान स्थायी समझा जाता था, तभी को महाशय गण्डाराम जी उस समय जबकि लेखराम की आयु पूरे १६ वर्ष की भी न हुई थी, अपने भतीजे के गुरु को प्रेरित करते है कि वह इंसपेक्टर मदारिस के पास लेखराम की नौकरी के लिए सिफारिश करे जिसके उत्तर में मुंशी तुलसीदास लिखते हैं 'अगर साहेब इंसपेक्टर बहादुर तशरीफ लाए और इमतिहान भी अच्छा हुआ, तो मैं जरूर लेखराम की निसबत जबानी अर्ज करूंगा । आइंदा उसकी किस्मत के तअल्लुक है।' सत्रहवां वर्ष अभी समाप्त नहीं हुआ था कि लेखराम को उनके चाचा ने पेशावर पुलिस में भर्ती करा दिया । उस समय कृस्टी साहब वहां की जिला पुलिस के सुपरिण्टेण्टेड थे । कैसी विचित्र घटना है कि जिन कृस्टी साहब ने लेखराम को पुलिस में भर्ती किया था, लेखराम के मारे जाने पर उन्हीं से मुझे घातक का पता लगाने के लिए विशेष प्रार्थना करनी पड़ी। कृस्टी साहेब ने मुझे बतलाया था कि जहां उन्हें मालूम था कि लेखराम अपनी निर्भयता तथा स्पष्ट वक्तृत्व के कारण कभी न कभी मारा जायगा, वहां उसकी दृढ़ता के लिए उनके हृदय में सदा मान का भाव रहा करता था।

संवत् १९३२ के पौष मास में २१ दिसम्बर सं० १८७५ ई० के दिन, लेखराम पेशावर पुलिस में भरती किये गये । पुलिस की नौकरी

का वृत्तान्त न तो मनोरंजक और न शिक्षादायक ही हो सकता है। अढ़ाई साल पीछे (१) मासिक की उन्नति और फिर प्रत्येक वर्ष के पीछे सारजन्टी के एक-एक दर्जे की उपलब्धि का विस्तारपूर्वक वृत्तान्त भी हमारे पल्ले कुछ नहीं डाल सकता। संवत् १९३७ तक बराबर वेतनोन्नति होती रही, किन्तु उस संवत् की समाप्ति के लगभग लेखराम के आत्मा में कुछ विचित्र परिवर्तन होने लगा। पुलिस में नौकर होने के पहिले ही जब लेखराम अपने चाचा से पास 'सुआबी' में थे, एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उन्हें परमात्मा की उपासना का अभ्यास हो गया था। प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही स्नान करके समाधि लगा बैठ जाते और दिन को गुरुमुखी अक्षरों में लिखी हुई गीता का पाठ करते। महाशय गण्डारामजी लिखते हैं कि एक रात्रि को खटिया पर समाधि लगाए पैठे थे कि सबके देखते-देखते खटिया से नीचे आ रहे। सिर नीचे और पांव खटिया के ऊपर हो गए, किन्तु इस अवस्था में भी वह अपने ध्यान में मस्त थे।

लेखराम के इस आरम्भिक ईश्वर, प्रेम की अवस्था पर पुलिस की नौकरी भी अपना कुछ असर न डाल सकी। संवत् १९२७ में फिर से वैराग्य की लहर उठी जिसने पुलिस की हुकूमत और सांसारिक ऐश्वर्य्य का नशा हिरन कर दिया। इस समय लेखराम के विचार सर्वथा नवीन वेदान्तियों के साथ मिलते थे। अद्वैत में निश्चय रखते हुए भी इन्होंने उपासना को जवाब नहीं दिया था और इसीलिए आजकल के वेदान्तियों की तरह वह अद्वैत मत को सांसारिक विषयों के भोग का साधन बनाने का प्रयत्न नहीं करते थे। गीता पढ़ने का परिणाम यह हुआ कि कृष्ण-भक्ति में अधिक श्रद्धा हो गई और रासलीला देखने की ओर रुचि बढ़ी, टीके लगाकर 'कृष्ण-कृष्ण' का जप करते रहते। कृष्ण भक्ति में प्रेम इतना बढ़ा कि नौकरी छोड़कर वृन्दावन निवास के लिए जाने को तैयार हो गये। इस समय लेखराम की आयु २१ वर्ष की थी। माता ने विवाह की तैयारी कर दी परन्तु उस समय वैराग्य से प्रेरित हरि भक्त ने विवाह से सर्वथा इन्कार कर दिया। महाशय गण्डारामजी इस विषय पर लिखते हैं कि जब पत्र द्वारा मना करने से कुछ न बना तो वह स्वयं लेखराम को समझाने के लिए गये। उस समय

उत्तर में लेखराम ने जो दृष्टान्त दिया उसे महाशय गण्डारामजी इस प्रकार वर्णन करते हैं-'एक मिसाल सुनाई वह यह है - एक राजा के सामने नट तमाशा करने वाले आये । उनको राजा ने ५००) रु० इनाम देने की प्रतिज्ञा करके कहा कि योगी की नकल उतारो । एक नट ने इनाम के लालच से योगी की ठीक ज्यों की त्यों नकल उतारी किन्तु समाधि छोड़ते ही हाथ इनाम पाने के लिए पसार दिया। मतलब इस मिशाल से यह था कि गृहस्थ में रहकर दो काम नहीं हो सकते है । तब हम सब निराश हो गये और जिस देवी का नाता लेखराम के साथ हुआ था उसका विवाह उनके छोटे भाई तोताराम के साथ कर दिया ।'

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम के पुराने उस्ताद तुलसीदास जी उन्हें मिलने के लिए पेशावर गये तो उनसे भी नौकरी छोड़कर संस्कृत पढ़ने के लिए देशान्तर जाने की इच्छा प्रकट की थी ।

# आर्य समाज में प्रवेश

ऊपर लिखा जा चुका है कि पहिले-पहिले वैराग्य की लहर दृढ़ संकल्प लेखराम के हृदय में एक नवीन वेदान्ती सिक्ख सिपाही के सत्संग से उठी थी। उसी लहर ने मन रूपी समुद्र के जल तरंग को विविध रूपों में बदलकर लेखराम को कहीं रासलीला के भंवर में घुमाया और कहीं गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों से घृणा दिलाई। किन्तु लेखराम की बुद्धि एक जागृत शक्ति थी, उसकी दृष्टि में यह भ्रम ठहर नहीं सकता था कि जीवात्मा ही ब्रह्म है और इसलिए वह कभी भी अपने उस समय के धार्मिक विचारों से सन्तुष्ट नहीं हो सकता था। इस समय की दो घटनाएं लेखराम के उस स्वभाव को जो उसे पैतृक दाय में मिला था, बहुत स्पष्ट करती है, इसलिए उनका वर्णन लाभदायक होगा।

पेशावर में नौकरी के दिनों अकेले होने के कारण आटा लेकर रोटी बनवाने तन्दूर वाले की दुकान पर जाया करते थे। एक दिन शहर में किसी आदमी को एक बैल या गाय ने सींगों से घायल किया जिसकी चर्चा सारे बाजार में फैल गयी। तन्दूर वाले की दूकान पर भी यही चर्चा थी। पंडित लेखराम तत्काल ही बोल उठे-'क्यों न गाय के सींग पकड़ लिए ?' और नहीं तो लाठी मार कर हटा देना चाहिए था। लोगों ने कहा - 'महाराज गोमाता पर कैसे हाथ उठाता ?' इस पर अक्खड़ लेखराम के होंठ फड़कने लगे, आंखे लाल हो गईं और अधिक अटक-अटक कर बोले - "अगर मेरे सामने गाय या बैल आवे और मुझे मारने लगे और जान का खतरा हो तो मैं तलवार से उसका सिर उड़ा दूं। इतना कहना था कि लोगों ने 'दुष्ट ! हत्यारा ?' इत्यादि दुर्वचनों का तूफान मचा दिया और तन्दूर वाले ने लोगों के जोश से डर कर आटा ज्यों का त्यों लौटा दिया।

एक ओर तो रुकावट सामने आने पर इतना अक्खड़पन और दूसरी ओर एक और घटना सुनाता हूं जिससे पता लगता है कि धर्म की जिज्ञासा ने उस तङ्ग जमाने में भी लेखराम को उदार सार्वभौम हृदय का स्वामी बना दिया था।

पेशावर से एक महाशय लिखते हैं कि पंडित लेखराम के मित्र महता कृपारामजी ने उन्हें महम्दी मत की पुस्तकों का अधिकतर पाठ करते देखकर एक दिन पूछा कि आप मुसलमान मजहब की पुस्तकों को इतना क्यों पढ़ते हैं, क्या यदि महम्मदी मत आपको सच्चा लगे तो आप मुसलमान हो जायेंगे। वहां उत्तर के लिए कुछ सोचने की आवश्यकता न थी, उत्तर मिला-बेशक ? अगर दस घड़े रक्खे हों और यह मालूम न हो कि ठण्डा पानी किस में है तो जब तक थोड़ा-थोड़ा पानी सबमें से न पिया जाये तब तक कैसे पता लग सकता है कि किस घड़े का पानी ठण्डा और मीठा है। इसी तरह सब मतों की पुस्तकों की पड़ताल करके पता लगाना चाहिए कि सच्चा धर्म कौन सा है।

इन दो उक्तियों से ही पंडित लेखराम के स्वभाव के उतराव-चढ़ाव का कुछ पता लग जाता है।

इन्हीं दिनों जब गीता की सटीक पुस्तक काशी से मंगाकर उसे व्याख्या सहित पढ़ रहे थे पंडित लेखराम को मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों के देखने की उत्कण्ठा हुई। तत्काल ही धर्म के प्यासे ने अलखधारी के सब प्रसिद्ध ग्रंथ मंगा लिए जो पेशावर में आर्य समाज स्थापना करते ही अपने अन्य ग्रंथों सहित, उसकी भेंट कर दिये। पेशावर आर्य समाज के पुस्तकालय की सूची भी पंडित लेखराम की ही लिखी हुई है, जिसमें ऋषि दयानन्द से मिली हुई अष्टाध्यायी के साथ - साथ 'तोहफतुल इसलाम' और 'पादशुल-इसलाम' इत्यादि के नाम भी दर्ज हैं।

पंजाब में मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी के लेखों में वैदिकधर्म के पुनर्जीवित करने में वही काम दिया जो ईसाई मत की स्थापना से पहले 'यहुन्ना' (John the Baptist) के व्याख्यानों ने किया था। यदि कृश्चियन चर्च को ईसा का उपदेश समझाने के लिए यहुन्ना के व्याख्यानों की आवश्यकता थी तो आर्य समाज को भी ऋषि दयानन्द का उद्देश्य समझाने के लिए अलखधारी की प्रचण्ड चोटों की जरूरत अवश्य थी। उस समय के नवशिक्षित पंजाबी और कुछ-कुछ संयुक्त प्रान्ती भी, अलखधारी को अपना 'पैगम्बर' और 'राहबर' मानते थे। अलखधारी के खुले स्पष्ट शब्द कुरीतियों से पीड़ित आर्य सन्तान को उत्साहित करने और उन्हें अन्ध परम्परा की कड़ी सांकलों को तोड़ने का बल प्रदान करने में बिजली का काम देते थे। किन्तु फिर भी पुराने ढर्रे के पौराणिकों पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता था। पौराणिक गढ़ को तोड़ने के लिए वदशास्त्र रूपी प्रबल शास्त्रों की आवश्यकता थी, जिनके चलाने में

निपुण एक ही कोपीनधारी संन्यासी शताब्दियों के पश्चात् दिखाई दिया था। अलखधारी ने उसी अखण्ड शस्त्रधारी बाल ब्रह्मचारी की शरण ली, और अपने लेखों की पुष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों और लेखों का प्रमाण दिया। यही कारण था कि मुंशी कन्हैयालल अलखधारी के सब चेले अन्त में ऋषि दयानन्द की पवित्र शरण में आये और आर्य समाज के उत्साही सभासद बने। इसी प्रकार के सुशिक्षित युवक वीरों में से लेखराम एक था।

अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ने से ही लेखराम को ऋषि दयानन्द के नाम और काम का पता लगा। तब इन्होंने अपने माने हुए अद्वैत मत की पड़ताल की और जब तक पूरी छानबीन करके अपने आपको परमात्मा का सेवक, पुत्र, भक्त न समझ लिया तब तक दम न लिया। इन्हीं दिनों समाचार पत्रों में ऋषि दयानन्द के धर्म प्रचार के काम की धूम मची हुई थी। लेखराम ने पत्र व्यवहार आरम्भ करके ऋषि प्रणीत ग्रंथों को मंगाया और संवत् १९३७ के अन्तिम भाग में ही पेशावर में आर्य समाज स्थापित कर दिया।

आर्य समाज की स्थापना तो हुई किन्तु उसकी सीमा लेखराम से बाहर न थी। जिनको मृत्यु के समय धर्म की मूर्ति माना गया और जिनके नाम के साथ लगकर पंडित शब्द अपने आपको स्वयं सम्मानित समझता था, उन्हें उस समय 'लेखू' कहकर पुकारा जाता था। लोकोक्ति प्रसिद्ध है 'माया तेरे तीन नाम। परसू, परसा, परसराम।' इसी प्रकार कहा जा सकता है कि आत्मसमर्पण करने वाले लेखराम भी लेखू से लेखराम और फिर 'धर्म वीर पंडित लेखराम' बन गये। लेखू महाशय उस समय पेशावर नगर में 'भाई रज्जी की धर्मशाला' के अन्दर रहते थे। उसी स्थान में आर्य समाज के साप्ताहिक नहीं प्रत्युत दैनिक अधिवेशन होने लगे। न कोई नोटिस लगाया जाता और न ढिंढोरा पिटवाया जाता, वैदिक धर्म का सिपाही लेखू अपने तीन चार मित्रों को समझाने बैठता। पांच में चार मित्रों को तो समझा लिया और वे 'खुद खुदा।' कहलाने से लज्जित होकर परमपिता की शरण में आ गये किन्तु पांचवां कट्टर नवीन वेदान्ती था जिसने लेखू को भी अद्वैत का पहला पाठ पढ़ाया था। जब वह किसी प्रकार भी काबू न आया तो लेखू से 'लेखराम' बने हुए मित्र ने कहा - 'कम्बख्त ! तेरी समझ में कुछ नहीं आता तब भी हमारी खातिर से ही आर्य बन जा। मित्र मण्डल तो न टूटेगा।' यह युक्ति प्रबल थी, काट कर गई। पांचों ने मिलकर काम करना आरम्भ किया। कहते हैं कि 'एक और एक ग्यारह' होते हैं। यहां तो - 'पांच-पंच

मिल कीजे काज ।' हारे जीते न आवै लाज वाला मामला हो गया ।

धर्म जिज्ञासु लेखराम ने आर्य समाज तो स्थापित कर लिया और नियमपूर्वक नित्यकर्मों का पालन भी आरम्भ कर दिया किन्तु दूसरों को समझाने में कभी-कभी स्वयं डांवाडोल हो जाते । अन्य सर्व सिद्धान्तों का तो बड़ी प्रबल युक्तियों से मण्डन करते किन्तु जब अपने नवीन वेदान्ती मित्रों से बातचीत होती तो कभी-कभी निरुत्तर हो जाते । फिर भी तो थे अभी तक सुन्नी आर्य ! एक लोकोक्ति है कि मुसलमानी मत सब रास्ते साफ करता और तलवा के जोर से लोगों को मुहम्दा बनाता-बनाता जब एटक नदी के किनारे पहुंचा तब गुरु नानक ने कहा - 'अब तो अटक ।' गुरु महाराज के इस आदेशानुसार असली मुसलमानी मत अटक के उस पार ही रह गया, तब मुल्लाओं ने अपनी बाङ्ग देनी शुरू की जिसको सुनकर अटक अटक के इस पारवाले हिन्दू भी मुसलमान होने लगे । इसीलिए हिन्दुस्तान के मुसलमान सुन्नी कहलाते है ।

उपरोक्त लोकोक्ति के अनुसार लेखराम भी अब तक सुन्नी आर्य ही थे । उन्होंने मन में ठान लिया कि आर्य समाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द से संशय निवृत्त करने और उनके आशीर्वाद लेने के लिए उनकी सेवा में अवश्य जाना चाहिए । ऐसा दृढ़ निश्चय करते ही साढ़े चार वर्षों की नौकरी के पश्चात् एक शाम की पहली छुट्टी (५ मई सं० १८८० ई० से) लेकर ११ मई को ऋषि दयानन्द के दर्शनार्थ अजमेर नगर की ओर चल दिये । लाहौर, अमृतसर, मेरठ आदि नगरों के प्रसिद्ध आर्य समाजों में ठहरते हुए १६ मई की रात को अजमेर जा पहुंचे और १७ मई को सेठ फतेहमलजी की वाटिका में पहुंच कर ऋषि दयानन्द के प्रथम और अन्तिम बार दर्शन किये । इस समागम का हाल आर्य पथिक ने अपने शब्दों में इस प्रकार दिया है -

'स्वामी दयानन्द के दर्शन से यात्रा के सब कष्ट विस्मृत हो गये और उनके सत्य उपदेशों से सर्व संशय निवृत्त हो गये । जयपुर में मुझसे एक बंगाली ने प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी व्यापक है, दो व्यापक किस प्रकार एक स्थान में इकट्ठे रह सकते है । मुझसे इसका कुछ उत्तर बन न आया । मैंने यही प्रश्न स्वामीजी से पूछा । उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा 'इसमें अग्नि व्यापक है वा नहीं ?' मैंने कहा कि व्यापक है । फिर पूछा - 'मिट्टी ?' मैंने कहा कि व्यापक है । फिर पूछा - 'परमात्मा ?' मैंने कहा कि वह भी व्यापक है । तब कहा - 'देखा ! कितने पदार्थ हैं, परन्तु सब इसमें व्यापक हैं । असल बात यह है कि जो (वस्तु) जिससे सूक्ष्म होती है वही उसमें व्यापक हो सकती है । ब्रह्म यतः सबसे अति सूक्ष्म है अतः सर्वव्यापक है ।'

इससे मेरी शान्ति हो गई ।

मुझे उन्होंने आज्ञा दी कि जो संशय मुझे हों उनको निवारण कर लूं । मैंने बहुत सोच समझकर दस प्रश्न लिखे जिनमें से तीन प्रश्न मुझे याद हैं, शेष सब भूल गये -

प्रश्न - जीव ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाएँ ।

उत्तर - यजुर्वेद का चालीसवां अध्याय सारा जीव ब्रह्म का भेद बतलाता है ।

प्रश्न - अन्य मतों के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं ?

उत्तर - अवश्य शुद्ध करना चाहिए ।

प्रश्न - बिजली क्या वस्तु है और कैसे उत्पन्न होती है ?

उत्तर - विद्युत सर्व स्थानों में है और रगड़ से उत्पन्न होती है । बादलों की विद्युत भी बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है ।

अन्त में मुझे आदेश दिया कि २५ वर्ष (की आयु) से पहले विवाह न करना ।

ऋषि दयानन्द जी के थोड़े ही सत्संग ने लेखराम के धार्मिक विचारों को दृढ़ कर दिया और इसीलिए उसके पश्चात् हम वैदिक धर्म पर उनका विश्वास चट्टान की तरह दृढ़ पाते हैं ।

# दासत्व से मुक्ति

अजमेर से लौटते ही पंडित लेखराम का पहला कारनामा उनके सारे शेष जीवन के पुरुषार्थ का एक दृष्टान्त मात्र है। एक दिन आप अपने पुराने परिचित सन्त दामोदरदास वेदान्ती के पास गये। सन्त जी ने कहा कि सब ब्रह्म ही ब्रह्म है। लेखराम ने पूछा 'महाराज ? आप भी ब्रह्म है, मैं भी ब्रह्म हूं और यह पुस्तक भी ब्रह्म है ?' उत्तर हां में मिलते ही पंडित लेखराम ने पुस्तक (जिसमें उपनिषदों का गुटका था) उठाली और वेदान्ती जी के मांगने पर फिर उनको न लौटाई। वह पुस्तक सं० १९५२ तक पेशावर आर्य समाज के पुस्तकालय में ग्रंथकर्त्ता ने स्वयं देखी थी। ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष सत्संग ने हमारे चरित्रनायक के मन पर स्वतंत्रता तथा धर्म भक्ति का रङ्ग अधिक गाढ़ा कर दिया था, इसलिए अजमेर से लौटकर उन्हें दिन रात धर्म प्रचार की ही धुन लगी रहती थी। पेशावर आर्य समाज की ओर से उर्दू का मासिक पत्र 'धर्मोपदेश' नामी जारी कराया जिसके सम्पादन का भार भी स्वयं ही उठाया। इसके साथ ही जनसाधारण में निडर होकर मौखिक धर्मोपदेश आरम्भ कर दिये। एक दिन विज्ञापन दिया कि मद्यपान निवारणार्थ व्याख्यान देंगे। व्याख्यान अंजुमन के हाल में था जिस कारण जिले की डिप्टी कमिश्नर अन्य अंग्रेजों सहित पधारे। बहुत से सेनाधिकारी भी उपस्थित थे। लेखराम का व्याख्यान युक्तियुक्त तथा प्रभावशाली हुआ। एक फौजी कप्तान ने उसका समर्थन किया और बतलाया कि उसने भी अपनी सेना में मद्यपान को बंद करा दिया है।

इस समय के पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट को जब पता लगा कि उनका नकशा-नवीन सार्जेण्ट लेखराम बहस मुबाहसे में बहुत ताक है तो प्रायः अपने डिप्टी रीडर वजीर अली के साथ उनका मुहाबसा (शास्त्रार्थ) कराकर स्वयं आनन्द लूटा करते। मुझे बतलाया गया है कि यह साहेब बहादुर प्रायः लेखराम के कथन का समर्थन किया करते थे।

किन्तु 'सब दिन जाते न एक सामना' अपनी धुन में मस्त लेखराम को उस गहरी नींद से जागना पड़ा क्योंकि नये पुलिस सुपरिटेण्डेण्ट के आने पर बहुत सी तबदीलियां हुई। इसी चक्र में लेखराम को पेशावर शहर से थाना

'सुआबी' में बदला गया। बाहर जाकर भी अपने प्रिय मासिक पत्र 'धर्मोपदेश' के लिए यथाशक्ति लेख भेजते रहे और समाज का मासिक चन्दा १) सैकड़ा के स्थान में बराबर ५) सैकड़ा देते रहे। जाने को पेशावर से बाहर चले तो गये किन्तु धर्म प्रचार की इच्छा रूपी प्रचण्ड अग्नि कहीं थोड़ा ही मन्द पड़ गई थी ? वहां पर भी महम्मदियों से बहस मुबाहसा जारी रहा। एक दिन पुलिस इंस्पेक्टर ने, जो थाने का मुलाहिजा करने आया था, लेखराम को मुबाहिसे में फंसा लिया। लेखराम भला धर्म के मामले में कब लिहाज करने वाले थे ? उत्तर मुंह तोड़ दिये। उस समय तो इंस्पेक्टर साहब अपना सा मुंह लेकर चुप हो गये किन्तु दूसरे दिन ही 'अदूल हुकमी (आज्ञा भंग) के अपराध में रिपोर्ट कर दी। तब १२ जून १८८३ को सदर से हुकुम आया कि 'छः मास के लिए लेखराम का एक दर्जा तोड़ दिया जावे और वह थाना कालूखां में बदला जावे।''

सुआबी के थाने में रहते हुए जो उर्दू भारत-दण्ड-संग्रह की पुस्तक लेखराम के पास थी उसके पहले पृष्ठ पर एक लट्टम पट्टमसा चित्र खींच कर आपने उसके ऊपरले भाग में ''ओ३म्'' लिखा था और उससे ऊपर एक झण्डे की शकल बनाई, अर्थात् उसी समय से यह निश्चय दृढ़कर लिया था कि ओ३म् का झण्डा किसी दिन सारे भूमण्डल पर फहरायेगा और सर्व-मतों का शिरोमणि बनेगा।

थाना सोआबी में होते हुए ही लेखराम के साथ महम्मदियों का द्वेष बहुत कुछ बढ़ चुका था, उसको अपने धर्म कार्यों के लिए समय भी कम मिलने लगा। 'धर्मोपदेश' के जीवन का सारा निर्भर केवल अकेले लेखराम की लेखनी पर ही न था प्रत्युत उसकी आर्थिक दशा को ठीक रखने का बोझ उठाने वाला भी कोई और न था। जब पेशावर आर्य समाज ने अधिक घाटा देखकर 'धर्मोपदेश' को बन्द करने की ठान ली तो एक मास के घाटे के लिए ५) लेखराम ने ही भेज दिये। इस पर भी जब मासिक पत्र की इतिश्री का ही निश्चय हुआ तो पंडित लेखराम ने अपने चाचा को लिखा - 'जो निश्चय आपने तथा आर्य समाज (पेशावर) के सर्व सभासदों ने 'धर्मोपदेश' को बन्द करने के विषय में किया है, वह तो शिरोधार्य है, परन्तु यह वाक्य कि हमारी समाज की उन्नति नजर नहीं आती, यह पांच छः रुपये मासिक समाज की उन्नति में व्यय करना चाहिए इत्यादि मुझे चिन्ता (में डालते है) .....मजमून रिसाला धर्मोपदेश जो मैंने भेजा था, लौटा दीजिए, ताकि उसको आर्य समाचार मेरठ में छपवाया जावे, (मेरे) मौजूदा पांच पांच रुपयों में से ३) महम्मद

मालिक मतवाशरांफी को दे दें और २) अपने हिसाब में जमा करवावें । ये शब्द स्वयं बोल रहे हैं, इन पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं ।

फिर सिवाय इसके और क्या हो सकता था कि रिसाला धर्मोपदेश को बन्द कर दिया जाये । लेखराम के इसके पहले मानसिक बच्चे का अन्त्येष्टि संस्कार मार्च संवत् १८८३ ई० को हो गया । थाना कालूखां में पहुंचने से पहले ही लेखराम के कट्टरपन की धूम महम्मदियों में हुई थी, किन्तु इस दुष्कीर्ति के होते हुए भी वह अन्य मतावलम्बियों को अपने धर्म के सिद्धान्त समझाने के उद्देश्य से ऐसा प्यार करते थे कि पक्षपातियों से न भड़काये हुए सर्वसाधारण मुसलमान उनके साथ प्रेम करने के लिए बाधित हो जाते । थाना कालूखां के विषय में मुझे केवल पेशावर की पुलिस-आज्ञा पुस्तक से दो आज्ञाओं की नकल मिली है, जिनके पता लगता है कि वहां के मुसलमान सब-इंस्पेक्टर और सारजण्ड लेखराम का एक दर्जा, किसी 'हजरत-शाह चौकीदार' के गफलत (असावधानी) दिखाने के कारण तोड़ दिया गया था । ये दोनों आज्ञाएं ६ जून, सं० १८८४ ई० को निकाली, किन्तु इनके निकलने से पहले ही लेखराम सारजण्ट को दफ्तर पुलिस में तबदील कर दिया था और वहां से उसे साहब असिस्टेण्ट मजिस्ट्रेट की पेशी में लगाया गया । यह बात प्रसिद्ध थी कि अपराध तो थाना कालूखां के मुसलमान सबइंस्पेक्टर अकेले का था, किन्तु लेखराम अपनी निडर हाजिर जवाबी के कारण बिना अपराध के ही दण्डनीय समझा गया, मुसलमान पुलिस अफसरों ने समझा कि पेशावर में बुलवाकर वे लेखराम का मुंह बन्द कर देंगे, किन्तु इस अत्याचार ने दासत्व की बेड़ियां को काटने और लेखराम का मुंह स्वतंत्रता से खुलवाने में प्रबल सहायता दी, और २४ जुलाई सं० १८८४ ई० को सजा के लिए स्मरणीय दिन लेखराम ने पुलिस की नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और लिख दिया कि दो महीने की कानूनी मियाद के पीछे उसे रोकने का किसी को भी अधिकार न होगा । दो मास के पश्चात् २४ सितम्बर १८८४ ई० को यह त्यागपत्र फिर पेश हुआ । लेखराम को त्यागपत्र लौटाने के लिए अंग्रेज हाकिमों ने बहुतेरा समझाया, किन्तु वहां तो लगन और लग चुकी थी । हमारे वीर चरित्रनायक ने किसी की न सुनी और ३० सितम्बर १८८४ ई० से त्यागपत्र की मञ्जूरी का हुकुम २४ सितम्बर को ही अपने हाथ से लिख और निकलसन साहब के उस पर हस्ताक्षर कराके मनुष्यों के दासत्व से स्वयं सदा के लिए मुक्त हो गये । इस दासत्व की सांकल के कटते ही लेखराम पुलिस सारजण्ट पंडित लेखराम बन गये ।

यह बात प्रसिद्ध है कि यवनों के संसर्ग से पंजाब प्रान्त में मांस-भक्षण का

प्रचार आर्य जाति में भी बहुत था और सीमा प्रान्त के जिलों में से पेशावर तो उस समय भी मांसाशियों का गढ़ समझा जाता था। यही कारण था कि पंजाब के पहले आर्य समाजियों ने अहिंसा धर्म के पालन की ओर अधिक रुचि नहीं दिखाई थी। मूर्तिपूजा और मृतक श्राद्ध के खण्डन में जो बड़े अग्रणी थे, वे सन्ध्या अग्निहोत्र के अभ्यास और मद्य मांसादि से वैराग्य को आवश्यक नहीं समझते थे, कारण यह था कि पहले-पहल बहुधा नकली और असली आर्य बहुत थे। किन्तु पंडित लेखराम असली आर्यों में एक ऊंचा पद रखते थे। मद्य तो पहले से ही उनके लिए घृणित वस्तु थी किन्तु मांसभक्षण को भी पापों में से एक समझते थे। सन्ध्या में अनध्याय को यह सबसे बढ़कर पाप मानने लगे थे। मुझे यह पता नहीं लगा कि उन्हीं दिनों नित्य हवन का प्रारम्भ किया था वा नहीं, किन्तु उनके अन्य चरित्रों से यही अनुमान होता है कि वैदिक धर्म की शरण में आते हुए उन्होंने सच्चे धर्म की प्राप्ति को जीवन और मृत्यु का प्रश्न समझा था।

यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है - 'होनहार बिरवान के चिकने-चिकने पात।' पंडित लेखराम पर यह लोकोक्ति सर्वांङ्ग मे चरितार्थ थी। जिस आर्यपथिक ने धर्म प्रचार के लिए यात्रा करते हुए दिन-रात को एक कर देना था, जिस लेखवीर ने सत्य धर्म की रक्षा के लिए अपूर्व ग्रंथ लिखने थे और जिस शास्त्रार्थ के धनी ने वैदिक धर्म के विरोधियों को स्थान-स्थान पर निरुत्तर करना था, उसकी आर्य समाज मे प्रवेश करते ही शास्त्रार्थ तथा लेख का अभ्यास हो चला था।

पेशावर आर्य समाज के भाइयों की कृपा से मुझे लेखराम की सभासदों के समय के सब रजिस्टर मिल गये है। एक ओर तो समाज का सारा आय-व्यय का हिसाब लेखराम के हाथ का लिखा हुआ है और दूसरी ओर आये गये पत्रों की प्रतिलिपि लगभग उन्हीं के हाथ की है, आये हुए पत्रों की नकल तो किसी अन्य के हाथ की है, किन्तु जो पत्र भेजे गये उनका सारांश प्रायः पंडित जी का अपना लिखा हुआ है। ८ फरवरी १८८२ ई० को अपने पादरी एम० वेरी साहब से इंजील के ईश्वरीय ज्ञान होने तथा मुक्ति के लिए ईसा पर ईमान लाने की जरूरत पर शास्त्रार्थ का घोषणापत्र भेजा। इसका जो उत्तर पादरी साहब की ओर से आया वह बड़ा गोल-माल है। इस समय समाज के मंत्री होते हुए भी पंडित लेखराम अपने आपको 'मैनेजर पेशावर आर्य समाज' लिखा करते थे और थे भी तो सर्व प्रकार के प्रबंधकर्त्ता ही।

पेशावर शहर से जब पुलिस की नौकरी में बाहर बदल गये थे, तब भी

मासिक चन्दा देते हुए आर्य समाज पेशावर के सभासद बराबर बने रहे। एक बार किसी काम के लिए पेशावर आये तो साप्ताहिक अधिवेशन में, जो एक तहसीलदार की धर्मशाला में हो रहा था, सम्मिलित हुए। साप्ताहिक अधिवेशन की समाप्ति पर अन्तरंग सभा के सभासद बैठे रहे और विचार यह होने लगा कि जिन तहसीलदार महाशय की धर्मशाला अधिवेशनों के लिए मिली है उनको ही समाज का प्रधान बनाया जाये। तहसीलदार साहब भी विराजमान थे। पंडित लेखराम के बिना संकोच के कहा - 'यह मांस खाते और शराब पीते है। ऐसा आदमी प्रधान नहीं होना चाहिए।' अन्य सब सभासद तहसीलदार साहब को प्रधान बनाने पर तुल गये। तब पंडित लेखराम अप्रसन्न होकर उठ गये, क्योंकि ऐसे विचार को सुनना भी वह पाप समझते थे।

सं० १८८२ ई० में जब पंडित लेखराम अभी पेशावर में ही थे ऋषि दयानन्द की ओर से उन्हें दो पत्र मिले। एक के साथ गोरक्षा - विषयक प्रार्थना पत्र प्रजा के हस्ताक्षरों के लिए था और दूसरे में पंजाब में हिन्दी प्रचार के लिए शिक्षा कमीशन को मेमोरियल भेजने की प्रेरणा थी। दोनों कार्य पंडित लेखराम ने बड़े उत्साह से कराये।

अभी पंडित लेखराम पेशावर से बाहर थानों में ही घूम रहे थे कि उनके पास कादियाके 'मिर्जा गुलाम अहमद' की बनाई पुस्तक 'बुराहीन अहमदिया' पहुंच गई, जिनमें मिर्जाजी ने पहले पहल पैगम्बरी का दावा किया था,. साथ ही यह पता लगा कि मिर्जा गुलाम अहमद के बड़े चेले हकीम नूरउद्दीन की संगत से जम्मू में एक ठाकुरदास नामी हिन्द महम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार है। पंडित लेखराम तीन-चार बार छुट्टी ले लेकर उसे समझाने के लिए जम्मू गये और इनका पुरुषार्थ इतना फलदायक हुआ कि ठाकुरदास कादियानी का गुलाम बनने से बच गया।

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम ने मिर्जाकी 'बुराहीन' के चारों हिस्से पढ़ डाले और जब चौथे भाग में आर्य समाज और आर्य सिद्धान्तों पर विषमय आक्रमण देखे तो तत्काल ही उस पुस्तक का उत्तर लिखना आरम्भ कर दिया। आर्यपथिक को जिस बात की धुन लगती उसके आरम्भ करने में एक पल की देर करना भी उन्हें दूभर हो जाता था। वहां नया कागज मंगाने का समय कहां था। आर्य समाज पेशावर के रजिस्टार पर ही उत्तर घसीटने लग गये।

जम्मू में पंडित लेखराम पंडित नारायण कौल के यहां ठहरे जो प्रसिद्ध पंडित मनफूल के भाई थे। यह महाशय अरबी तथा फारसी के बड़े विद्वान् थे इनसे पंडित लेखराम को 'बुराहीन अहमदिया' के खण्डन में बड़ी सहायता

मिली ।

धर्मान्दोलन तथा धार्मिक विषयों के विचार में तो लगन पहले से ही लग चुकी थी, ऋषि दयानन्द की धर्म तथा देश के लिए, शोकजनक मृत्यु ने और भी अधीर कर दिया और सारे संसार को वैदिक धर्म के झण्डे के नीचे लाने का कर्तव्य भी लेख-वीर ने अपना ही समझकर धर्मवीर का पद प्राप्त करने की ओर पग उठाया । कोई आर्य जाति में से ईसाई वा मुसलमानी मतों की ओर झुके तो उसे बचाने का बीड़ा लेखराम उठाते थे। जन्म के ईसाई और मुसलमान को वैदिक धर्म की शरण में लाने का अपना कर्तव्य बतलाते थे । वैदिक धर्म पर कोई भी आक्षेप हो उसका उत्तर देना इनका कर्त्तव्य था और प्रत्येक प्रकार के नास्तिकत्व का खण्डन इनका ही धर्म था ।

इन्हीं दिनों यह समाचार गरम था कि मुजफ्फरपुर के रईस चौधरी घासीरामजी महम्मदा मत की ओर झुके हुए हैं । ऐसा भी अनुमान होता है कि शायद उस अवसर पर छुट्टी न मिलने के कारण ही पंडित लेखराम ने सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया हो । मेरे चाचा उन दिनों मुजफ्फपुर में पुलिस इंस्पेक्टर थे । उनसे मुझे पता लगा कि आर्य उपदेशकों ने महम्मदी मौलवियों को लाजवाब कर दिया था ।

कुछ भी हो पंडित लेखराम ने अपना त्याग पत्र स्वीकार होने तक कादियानी मिर्जा के जवाब में 'तकजीब बुराहीन अहमदिया का प्रथम भाग' तैयार करके लिख लिया था ।

●

# धर्म प्रचार में अनुराग

दासत्व से मुक्त होते ही सबसे पहले आर्य समाज रावलपिंडी के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे। उन दिनों वे बड़े वक्ता न थे कि बिना लिखे कोई विषय निभा सकें किन्तु फिर भी एक लेखबद्ध व्याख्यान उस उत्सव में पढ़ा। उसका शीर्षक था - 'आर्यधर्म के आलमगीर होने के सबूत और उसके आइन्दा तरक्की के निशान मजबूत।' काफिया मिलाने का पहले से ही शौक था। यह व्याख्यान लाला गङ्गाराम धमने मेरे पास रावलपिंडी आर्य समाज के कार्यालय से निकाल कर भेजा था जो २१ तथा २८ आषाढ सम्वत् १९५४ के सद्धर्म-प्रचारक में छप चुका है। इस व्याख्यान में पंडित लेखराम ने यह बड़ा उदार भाव प्रकट किया था कि -

'स्वामी दयानन्द और नानकजी के खयालात वाहिद थे। मेरे खयाल में वह (बाबा नानकजी) वेदोक्त धर्म को तरक्की देने वाले थे और हत्तलवसा (यथा शक्ति) उन्होंने आर्य धर्म फैलाने में बहुत कोशिश की।' रावलपिंडी से गुरुदासपुर पहुंचकर एक ओर तो मिर्जा साहेब को शास्त्रार्थ के लिए चैलेन्ज भेजा और दूसरी ओर १ अक्टूबर १८८४ को विज्ञापन देकर बड़ी जनता की उपस्थिति में उनके आक्षेपों के उत्तर पढ़े गये। मिर्जा गुलाम अहमदने तो आना ही क्या था हां आर्य जगत् में जो खलबली मिर्जा के ग्रंथ ने मचाई थी वह दूर हो गई। पंडित लेखराम की यह पहली पुस्तक ऐसी जबरदस्त समझी गई कि बहुत लोगों ने इसकी हस्तलिखित प्रतियां बड़ा व्यय करके प्राप्त कीं।

गुरुदासपुर में व्याख्यान देने के पश्चात् पंडित लेखराम लाहौर लौट गये और वहां कुछ दिनों, उपदेश का कार्य भी जारी रखते हुए, संस्कृत व्याकरण का अभ्यास करते रहे। पंडित लेखराम इस समय दृढ़ता से संस्कृत साहित्य, विशेषतः वैदिक साहित्य का स्वाध्याय नियम पूर्वक गुरुमुख से करना चाहते थे किन्तु यह काम प्रथम आश्रम की शान्त अवस्था में ही हो सकता है। पंडित लेखराम के अन्दर, संसार में अविद्या का राज्य देखकर बड़ी भारी हल-चल मच चुकी थी। ऋषि दयानन्द की अकाल मृत्यु ने उनका उत्तरदातृत्व बहुत बढ़ा दिया था, इसलिए जब उस कादियानी मिर्जा की ओर से, जिसके 'झूठे दावों का तरदीद' यह ग्रंथ रूप में कर चुके थे, एक विज्ञापन देखा, जिसमें उसने

महम्मदी मत की पुष्टि में चमत्कार (Miracle) दिखाने की प्रतिज्ञा की थी, तो इनसे न रहा गया।

मिर्जाजी ने अपने इश्तिहार में चौमुखी लड़ाई की घोषणा दी थी। उन्होंने सर्व मन्तव्य पुरुषों को इस लाभ की दावत दी थी और अपने आपको 'खुदा का पैगम्बर' सिद्ध करने के लिए प्रतिज्ञा की थी कि यदि कादियां में एक वर्ष तक रख कर वह कोई दैवी चमत्कार (आसमानी निशान) न दिखा सके तो इस प्रकार एक वर्ष रहे हुए मनुष्य को (२००) मासिक के हिसाब से (२४००) देंगे। पंडित लेखराम ने जब यह इश्तिहार पढ़ा उस समय वह अमृतसर में थे। विज्ञापन पढ़ते ही उन्होंने ३ अप्रैल, १८८५ ई० को मिर्जाजी के नाम पत्र लिखा जिसमें उनकी शर्तों को स्वीकार करके प्रतिज्ञा की कि जिस समय वह २४००) सरकारी कोष में दाखिल करने की सूचना देंगे उसी समय लेखरामजी स्वयं कादियां में पहुंच जायेंगे। इसके उत्तर में मिर्जा ने एक नई अड़चन लगाई कि वह साधारण पुरुषों से वाद-विवाद नहीं करना चाहता, उसके साथ कोई अपने सम्प्रदाय का प्रामाणिक और प्रसिद्ध आदमी ही जुटे तो वह तैयार होगा। यह पत्र पंडित लेखराम के पास लाहौर में ९ अप्रैल १८८५ ई० को पहुंचा और उसी दिन उन्होंने इसका उत्तर दे दिया, जिसमें पहले मिर्जा की नयी अड़चन का खंडन किया और लिखा कि उन्हें धन का लालच इस असली मुबाहसे के लिए नहीं खींच रहा प्रत्युत् सत्यासत्य के निर्णय के लिए वह तैयार होकर मैदान में आना चाहते हैं। इसके पश्चात् मिर्जाजी ने नयी बाधा खड़ी की। उन्होंने पंडित लेखराम से भी (२४००) जमा कराने की नयी याचना की। इसी प्रकार प्रत्येक नये पत्र में मिर्जाजी ने नये-नये अड़ंगे लगाए, जिनके मुंहतोड़ परन्तु सभ्यतामय, उत्तर पंडित लेखराम ने दिये। यह पत्र व्यवहार ५ अगस्त १८८५ तक बराबर जारी रहा किन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

इसी अन्तर में पंडित लेखराम ने अमृतसर और लाहौर में प्रचार करने के पश्चात् २८ अप्रैल को पेशावर को प्रस्थान किया। आर्य समाज पेशावर के पहले भी प्रधान थे। २५, २६ अप्रैल को अपने प्रिय आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और उस अवसर पर व्याख्यान देने के अतिरिक्त ९ अप्रैल तक धर्म प्रचार किया। आगामी वर्ष के चुनाव में पंडित लेखराम ही प्रधान नियत हुए और पंजाब की ओर लौट आये। इस ओर भी बराबर धर्म प्रचार करते हुए २० जुलाई ५ अगस्त तक अमृतसर में निवास किया। इस स्थान में उन्हें मिर्जा गुलाम अहमद के उत्तरों की प्रतीक्षा रही।

जब मिर्जाजी की ओर से कोई उत्तर न मिला और तीन मास व्यतीत हो गये (जिस अन्तर में पंडित लेखराम धर्म प्रचार का कार्य करते और साथ-साथ

पुस्तकों को लिखने का काम भी जारी रखते गये) तो आर्य मुसाफिर ने मिर्जाजी को स्मरणार्थ एक पोस्टकार्ड भेजा जिसके उत्तर में मिर्जाजी ने लिखा - 'कादियां कोई दूर तो नहीं है, आकर के मुलाकात कर जाओ। उम्मीद कि यहां पर बहमी (परस्पर) मिलने से शरायत हो जावेगी।' धर्मवीर आर्य मुसाफिर को तो केवल हाथ अटकाने को स्थान चाहिए था, वह उसी समय मिर्जाजी की परीक्षा के लिए तैयार हो गये और जिस चालबाज बाघ के पास जाने से बड़े-बड़े मतवादी डरते थे निःशङ्क उसके साथ उस ही मकान में 'दस्त पंजा' लेने के लिए जा पहुंचे।

पंडित लेखराम जी पूरे दो कादियां में रहे। एक और तो उन्होंने मिर्जाजी के 'इस्लामी कोठे' पर जा-जा जाकर उनका नाक में दम कर दिया। तीन बार कई भद्र पुरुषों को साथ लेकर गये और तीनों बार मिर्जा जी को निरुत्तर करके लौटे। और दूसरी ओर खुले व्याख्यानों में न केवल मिर्जाजी के 'बुराहीन' की ही कलई खोली, बल्कि उनकी इलहामी चालबाजीयों का भी भण्डा फोड़ दिया, जिससे मिर्जा की आमदनी में बड़ी बाधा पड़ गई। इन्हीं दिनों कादियां में आर्य समाज भी स्थापित हो गया जिसमें मिर्जाजी के फांसे हुए बहुत से भोले हिन्दू भी सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य की शरण में आये ?

मिर्जा गुलाम अहमद का नाक में दम कर और कादियां में एक जबरदस्त आर्य समाज स्थापित करके पंडित लेखराम फिर अन्य स्थानों में वैदिक धर्म का प्रचार करने चले गये। बटाला आदि नगरों में धर्मोपदेश देकर तृषित आत्माओं को शीतल सद्धर्म रूपी जल पिलाते हुए आर्य पथिक अम्बाले पहुंचकर अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे थे जब उन्होंने सुना कि कादियां के, 'विष्णुदास' नामी हिन्दू को बुलाकर मिर्जा जी ने कहा है कि वह एक साल के अन्दर मुसलामन न हो जायेगा तो उनके 'इलहाम के मुताबिक' वह मर जायेगा। २ दिसम्बर १८८५ को विष्णुदास को मिर्जा जी ने यह धमकी दी और तार पहुंचते ही ४ दिसम्बर को पंडित लेखराम बिजली की तरह कादियां में आ धमके। उसी दिन विष्णुदास को बुलाकर समझाया और खुले व्याख्यान में मिर्जाजी की फिर से वह कलई खोली गई, कि भूला भटका भाई सचमुच व्यापक विष्णु भगवान् का दास बनकर आर्य समाज का सभासद बन गया और उसी दिन से मिर्जाजी की कुटिल नीतियों का खण्डन होने लगा।

o

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
परिग्रहण क्रमांक .. 1903
दयानन्द ...

# क्रियात्मक आर्य मुसाफिर बनाना

सं० १८८६ ई० के आरम्भ में पंडित लेखराम की योग्यता की आर्य जगत में धूम मच गई थी । 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' का प्रथम भाग ठीक प्रबंधन न होने से अभी छप नहीं सका था परन्तु उसकी नकलें होकर दूर-दूर पहुंच चुकी थीं । महम्मदियों के मुकाबिले पर आर्य समाजियों ने उस पुस्तक की युक्तियों से काम लेना आरम्भ कर दिया था । जहां कहीं मुसलमानों से मुबाहिसे की छेड़छाड़ होती या उनका कुछ भी जोर होता वहीं से पंडित लेखराम को निमंत्रण पहुंच जाता ।

इस ईसवी सन् के मार्च मास में मिर्जा गुलाम अहमद होशियारपुर में गये। वहां आर्य समाज के प्रसिद्ध सभासद मास्टर मुरलीधर जी गवर्नमेन्ट स्कूल में ड्राईङ्ग मास्टर (आलेख्याध्यापक) थे । मास्टर जी उन आर्यों में से थे तो वेद-विरुद्ध मतों की पोल खोलने के लिए हर समय तैयार रहते हैं । मिर्जाजी की डींगों को सुनकर मास्टर जी से रहा न गया और ११ मार्च १८८६ की रात को उन्होंने मिर्जाजी के डेरे पर पहुंचकर मुहम्मद साहब के चांद के टुकड़े करने वाले चमत्कार (मोजजे) पर लेख बद्ध आक्षेप किये । अनुमानतः ५ वा ६ घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे । फिर १४ मार्च १८८६ के दिन मिर्जा जी ने यह प्रतिज्ञा स्थापन की कि रूह (जीवात्मा) अनादि नहीं, पैदा की हुई (हादिस) है । इन प्रश्न के सुनाने और बातें बनाने में ही मिर्जाजी ने दो अढ़ाई घण्टे समाप्त कर दिये और फिर पांच छः घण्टों तक प्रश्नोत्तर होते रहे । मिर्जा जी को इस समय रुपये बटोरने की सूझ रही थी और गम्भीर विषय की पुस्तकों की अपेक्षा बटेरबाजी वाली पुस्तके अधिक बिकती है, इसलिए इस मुबाहिसे पर अपने ढङ्ग का निमक मिरच मसाला चढ़ाकर उन्होंने एक २६० पृष्ठों की पुस्तक 'सुरमा चश्मा आरिया' (अर्थात् आर्यों की आंखों के खोलने के लिए सुरमा शीर्षक देकर छपवा दी ।

पंडित लेखराम के दिल पर चोट तो इस पुस्तक के छपने से बहुत

लगी परन्तु अभी पहली तैयार की हुई पुस्तक ही नहीं छपी थी, इसलिए उसकी छपाई में लगकर इस बात की भी प्रतीक्षा करते रहे कि मास्टर मुरलीधर जी ही दूसरी पुस्तक का उत्तर छपवावें । किन्तु जब जुलाई सं० १८८७ को 'तकजीव बुराहीम अहमदिया' का प्रथम भाग छप कर हाथों हाथ बिक गया और आर्यपथिक को पता लगा कि मास्टर मुरलीधर जी को सरकारी नौकरी के कारण उत्तर लिखकर छपवाने करके अवकाश नहीं है तो उन्होंने स्वयं ही मिर्जा के दूसरे आक्रमण का उत्तर भी तैयार किया, और उसका नाम रक्खा 'नुकसा खब अहमदिया' । इस नामकरण का हेतु स्वयं आर्य मुसाफिर ने इस प्रकार दिया है - 'असल में यह मिर्जा के एतराज मासूलियत से कोसों दूर है और साथ ही बेजाशेखी और लगवीयत (झूठ) से तमाम किताब भरपूर है जो रास्ती नहीं बल्कि इलहामी खब्त (पागलपन) मालूम होता है, पस जरूर हुआ कि हम वैदिक हिकमत से उनके खब्त का इलाज करें, ताकि खुदा सेहत से, बिना बरां इस रिसाले का नाम 'नुखसा खब्त अहमदिया रखा गया ।'

सं० १८८६ के प्रथम भाग में विविध स्थानों में प्रचार करके पंडित लेखराम फिर अप्रैल के अन्तिम सप्ताह में पेशावर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे और अपने व्याख्यानों से अपने प्रथम स्थापन किये हुए आर्य समाज को लाभ पहुंचाया । फिर स्थान-स्थान पर व्याख्यान देने के साथ-साथ ही पादरी खड़कसिंह के छः व्याख्यानो के उत्तर लिखकर भी छपवाये और बहुत सी छोटी-छोटी पुस्तकें अवैदिक सिद्धान्तों के खंडन मे निकालीं।

पंडित लेखराम के इस वर्ष के काम के विषय में १९ अक्टूबर १८८६ की आर्य पत्रिका में एक महाशय ने इस प्रकार लिखा था :-

'लेखराम आर्य समाज लाहौर का एक कट्टर सभासद है । इसने अपना जीवन समाज के लिए बलिदान कर दिया है । यह अरबी और फारसी का बड़ा विद्वान् तथा वेत्ता है । अमृतसर आर्य समाज के गत वार्षिकोत्सव में इसने विरोधी मतों की समीक्षा पर एक उत्तम व्याख्यान दिया । इसके मियानी पिण्डदादनखां, मेरा आदि में अत्युत्तम व्याख्यान दिये, मजीठा में लाला गण्डामल असिस्टेन्ट इंजीनियर को आर्य समाज की सच्चाइयों पर विश्वास दिलाया और अब कश्मीर में धार्मिक शास्त्रार्थ के लिए जा रहा है ।' ऊपर के उद्धृत लेख से एक तो यह पता लगता है कि अपने निवास स्थान कहूटे में भी आर्य समाज की स्थापना के यहां साधन बने थे, और दूसरे यह ज्ञात होता है कि इनके अर्थ-त्याग का सम्मान बने आर्य जाति ने आरम्भ कर दिया था । लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि - 'घर के जोगी

जोगीना, आन गांव के सिद्ध।' परन्तु ज्ञात होता है कि लेखराम उन थोड़े से आदमियों में से थे । जिनका अपने ग्राम में भी मान होता है ।

सं० १८८७ के आरम्भ में पंडित लेखराम को 'आर्य गजट फीरोजपुर' का सम्पादक बनाया गया । उस समय पंजाब के आर्य समाजों के हाथ में अंग्रेजी के 'आर्य पत्रिका' के अतिरिक्त अपने विचार तत्काल सर्वसाधारण तक पहुंचाने का एकमात्र साधन 'आर्य गजट' नामी उर्दू का साप्ताहिक ही था। पंडित लेखराम के प्रबल हाथों में आकर यह एक दम से चमक उठा। अनुमानतः दो वर्षों तक पंडित लेखराम इस समाचार पत्र का सम्पादन करते रहे । उन दिनों के लेख पंथाइयों के दिलों को हिला देने वाले निकला करते थे ।

यद्यपि सम्पादकी बोझ उठाये हुए भी लेखराम जी आर्य समाजों के जलसों पर जाते रहे और धर्म प्रचार करते रहे किन्तु एक स्थान में टिक जाने से प्रमाणों को ढूंढ कर हवाले देने और अपनी पुस्तकों को छपवाने की उनकी बड़ी सुगमता मिल गई । इन्हीं दिनों 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' का प्रथम भाग छपा और 'नुखसा खब्त अहमदिया' भी तैयार हो गया। इसी अन्तर में दस बारह अन्य छोटी-छोटी पुस्तकें तैयार हुई और कुछ छप भी गई, और अन्य बहुत सी बड़ी पुस्तकों के लिए मसला इकट्ठा होता रहा ।

# ऋषि जीवन का अन्वेषण

अब तक यद्यपि नाम 'आर्य मुसाफिर' था परन्तु यात्रा की परिधि संकुचित सी ही थी। पंजाब से बाहर आर्य पथिक ने पांव नहीं रक्खा था। तब यात्रा की परिधि में विस्तार के सामान पैदा होने लगे।

ऋषि दयानन्द का अन्त्येष्टि संस्कार हुए साढ़े चार वर्ष व्यतीत हो चुके थे। आर्य विभिन्न जनता की ओर भी ऋषि के जीवन चरित्र की मांग पर मांग आ रही थी। टका सीधा करने वालों ने साधारण लेख छापकर ऋषि के जीवन को संदिग्ध बनाना भी आरम्भ कर दिया था। सांसारिक विभूतियों पर लात मारने वाले योगी को सिद्धियों का साधक बताना और मनुष्य पूजा की जड़ पर कुल्हाड़ी रखने वाले ईश्वर भक्त को पूज्य अवतार बतलाना आरम्भ हो गया था, और आर्य समाजियों के कानों पर जूं भी नहीं रेंगती थी। ऐसे समय में मुलतान आर्य समाज ने अपने १२ अप्रैल, सं० १८८८ के अधिवेशन में सम्मति दी कि पंडित लेखराम को स्वामी दयानन्द के जीवन संबंधी वृत्तांत इकट्ठ करने के लिए नियत किया जाये। मुलतान आर्य समाज का यह प्रस्ताव आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के १ जुलाई सं० १८८८ के अधिवेशन में पेश हो कर स्वीकार हुआ। तब पंडित लेखराम जी से इसके विषय में पत्र व्यवहार शुरू हुआ और नवम्बर १८८८ में 'आर्य गजट' के सम्पादन को छोड़कर पंडित लेखराम सचमुच आर्य मुसाफिर बन गये।

इस समय तक यद्यपि पंडित लेखराम का नाम मैं सुन चुका था और अमृतसर के व्याख्यान का भी आनन्द ले चुका था, परन्तु अधिक परिचय मेरा आर्य पंथिक के साथ नहीं हुआ था। नवम्बर के मध्य में पंडित लेखराम ऋषि जीवन संबंधी घटनाओं का वृत्तान्त जमा करने निकले और लाहौर से कार्य आरम्भ किया। इस वर्ष के लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में पंडित लेखराम ने २८ नवम्बर को, धर्म चर्चा के समय शङ्का समाधान मे बड़ा प्रसिद्ध भाग लिया, जिसके कारण उपदेशों में उनका पद ऊंचा समझा जाने लगा। उसके पश्चात् १२ दिसम्बर की शाम को रेल से पंडितजी जालन्धर नगर में पधारे। १३ को प्रातःकाल मेरे साथ पंडित जी का वार्त्तालाप होता रहा, जिससे हम दोनों एक दूसरे के अधिक समीप हुए। उसी सायंकाल पंडितजी

की 'वेद ईश्वर ज्ञान' विषय पर, आर्य मन्दिर जालन्धर शहर में व्याख्यान हुआ। मेरी 'दैनिक वृत्तान्त पंजिका' में लिखा है, फिर पंडित लेखराम का व्याख्यान सुनने गया। जनसंख्या ५०० थी जिसमें सुशिक्षित सभ्य अधिक सम्मिलित थे पंडित जी की स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है।

जालन्धर नगर से चलकर शायद मार्ग में एक दो स्थानों पर ठहरते हुए पंडित लेखराम सीधे मथुरा पहुंचे। वहां सारा दिसम्बर मास स्वामी विरजानन्द सरस्वती जी के शिष्यगण पंडित युगलकिशोर, पंडित दामोदर चौबे, पंडित हरिकृष्णादि से ऋषि दयानन्द और उनके गुरु संबंधी वृत्तान्त पूछते और लिखते रहे।

सं० १८८९ के प्रथम भाग में पंडित लेखरामजी बराबर संयुक्त प्रान्त में ही काम करते रहे। जहां ऋषि जीवन संबंधी अन्वेषण के लिए पहुंचते वहां व्याख्यान भी अवश्य देते, और यह व्याख्यान वेदमत-मंडन तथा महम्मदी-मत-खण्डन में ही होते। मथुरादि से ऋषि जीवन का मसाला इकट्ठा करते हुए आर्य पथिक अजमेर पहुंचे। उस समय अजमेर नगर में बड़ा भारी भूचाल आया हुआ था, आर्य समाज की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति देखकर पौराणिकों, ईसाइयों, मुसलमानों और जीव-रक्षा का दम भरने वाले जैनियो तक ने विरोध का झण्डा खड़ा कर दिया था। इसका विशेष कारण यह भी था कि उन्हीं दिनों पंडित लेखराम की 'तकजीव' और 'नुखसा सबूत' पढ़कर अजमेर का एक अब्दुलरहमान नामी व्यक्ति महम्मदी मत को तिलांजलि देकर वैदिक धर्म की शरण में आया था। आर्य समाज की ओर से इसे सोमदत्त का सौम्य नाम दिया गया था। इससे मुसलमान बहुत ही दुःखित थे और इन्होंने ही पौराणिक मंडल को उत्तेजना देकर पहले उनका उत्सव रचवाया। आर्य बेचारे छेड़छाड़ से किनारा किये बैठे थे कि पौराणिकों के दूत उनके घरों में पहुंच-पहुंच कर ललकारने लगे। वृद्धों ने तो इसकी कुछ परवा न की किन्तु १० या १२ युवकों से न सहन हो सका और वे प्रश्नोत्तर के लिए पौराणिकों के निमंत्रणानुसार पहुंच ही गये। जब प्रश्नोत्तर का समय आया और एक आर्य युवक ने पहला ही प्रश्न किया तो पौराणिक दल घबरा गया और कुछ बदमाशों ने शोर मचाकर, कि आर्यों ने एक मूर्ति को खंडित कर दिया है, आर्यों पर लात, घूंसा और लाठी से आक्रमण कर दिया। इस समय सोमदत्त ने बड़ी बहादुरी दिखाई और पटके हाथ से भीड़ को हटाता हुआ आर्य युवकों को बचा लाया।

जब इधर कुछ पेश न गई तो मुसलामों की बारी आई। उन्होंने न केवल आर्य समाज के विरुद्ध खुले व्याख्यानों में ही आक्रमण शुरू किये बल्कि सहस्रों ने इकट्ठे होकर यह धमकी दी की यदि कोई आर्य बोला तो जान से

मारा जायेगा। 'रहनुमा' नामी एक मासिक पत्र भी मुसलमानों ने उसी समय निकाला था।

यह समय था जब पंडित लेखराम अजमेर नगर में पधारे। पंडित लेखराम के पहुंचने पर आर्य पुरुषों को अपनी चिन्ता तो भूल गई, उल्टी इनकी रक्षा की चिन्ता जाग उठी। विचार किया गया कि पंडितजी की रक्षा के लिए चार पहरे वाले उनके पास रहें। जब धर्मवीर ने इस घुसफुस को सुना तो झिड़क कर कहा - 'मुझे कोई जरूरत नहीं, तुमलोग बड़े डरपोक हो। कोई क्या कर सकता है ?' दूसरे दिन ही मुसलमानों की ओर से आदमी आने लगे जिनसे पंडितजी बराबर बातचीत करते रहे। व्याख्यानों की धूम मच गई। एक मौलवी ने पंडितजी से हिन्दी पढ़ने की इच्छा प्रकट की। आर्य समाजियों के गुप्त रीति से मना करने पर उनको झिड़क दिया और मौलवी को पढ़ाने लग लगे। अन्त को वहां के आर्यों से एक नया मासिक 'वैदिक विजय पत्र' निकलवा कर उसकी सहायता अपने लेखों से करते रहे। जो 'जिहाद' नामी प्रसिद्ध पुस्तक पंडित लेखराम की मिलती है वह पहले इसी 'वैदिक विजय पत्र' में क्रमशः निकली थी।

इन्हीं दिनों अजमेर से बाहर भी राजपूताने के कुछ स्थानों में ऋषि जीवन संबंधी अन्वेषण करते हुए नसीराबाद छावनी मे पहुंचे। वहां मुहम्मदियों से शास्त्रार्थ छिड़ गया। शहर कोतवाल शराबी कायस्थ था, जिसने शास्त्रार्थ को मध्य में ही बन्द कर दिया। उसी रात शराबी कोतवाल को लकवा मार गया और दूसरे दिन वह मर गया। सर्व साधारण में प्रसिद्ध हो गया कि उस दुष्ट को पंडित जी का शास्त्रार्थ बन्द करने का फल मिला। अन्य उपदेशक शायद सर्वसाधारण के इस मिथ्या विश्वास से अनुचित लाभ उठाते किन्तु आर्य पथिक ने लोगों के इस भ्रम को दूर करने का बहुत ही प्रयत्न किया।

इसके पश्चात पता लगता है कि पंडित जी छुट्टी लेकर अपने गृह पर आये। थोड़े दिनों ही घर पर ठहर कर भादों के आरम्भ में फिर अपने काम पर चले गये। २४ अगस्त सं० १८८९ के सद्धर्म-प्रचारक में छपा था - 'पंडित लेखराम जी ने सवानह उमरी (जीवन चरित्र) का काम फिर शुरू कर दिया। है चन्द रोज हुए मेरठ की तरफ रवाना हुए। अब पहले मुसालिक मगरबी व शिमाली (पश्चिोत्तर देश) में दौरा लगायेंगे।'

मालूम होता है कि मेरठ में आर्य पथिक बहुत दिनों तक ठहरे क्योंकि 'निवेद वेदगान' नामी पुस्तक मेरठ के रामचन्द्र वैश्य से छपवा कर माघ १९४६ के आरम्भ में ही सद्धर्म प्रचारक के कार्यालय में पहुंच गई थी। उस लघु पुस्तक की समालोचना मेरी लिखी हुई १ फरवरी १८६० के सद्धर्म

प्रचारक में छपी है । इस पुस्तक में शास्त्रीय प्रमाणों से विधवा विवाह का ही समर्थन किया गया था । इसीलिए मुझे पहले पहल उस समय यह संदेह हुआ था कि आर्यपथिक नियोग को आपातकाल का धर्म कदाचित् नहीं मानते हैं । समालोचना करते हुए मैंने लिखा था - 'तर्जेतहरीर से वाजह होता है कि पंडित साहेब नियोग को वेदानुकूल नहीं मानते, बल्कि पुनर्विवाह हर वेवा का जायज समझते हैं । हमारी राय में बेहतर हो अगर पंडित साहेब इस बहस को छेड़ें ताकि इस अमर मुतनाजिया का कुछ फैसला हो और आर्य समाज एक खास नियम का पावन्द हो जावे ।' इस विषय को इसी स्थान में समाप्त करने के लिए इतना लिखने की आवश्यकता है कि संवत् १९५० वि० तक पंडित लेखराम नियोग के विषय में कुछ संदिग्ध सी सम्पत्ति रखते थे और प्रायः प्रसिद्ध आर्य समाजियों के साथ इस विषय में बातचीत करते रहते थे । जब संवत् १९५१ में मेरे साथ अधिक परिचय हुआ और खुली बातचीत होने लगी उस समय मेरे साथ विचार करने पर ही उन्होंने इस विषय में अपनी सम्पति बदल ली थी और इसी लिए उन्होंने पादरी टी० विलियम्स और पंडित शिवनारायण अग्निहोत्री (वत्ता तान देवसमाजी गुरु) की शङ्काओं का समाधान करने के लिए, 'मसला नियोग' नामी ट्रेक्ट लिखा जो 'कुलियात आर्य मुसाफिर' के २७९ पृष्ठ से आरम्भ होता है । मुझे भली प्रकार विदित है कि अपनी मृत्यु से एक वर्ष पहले वह द्विजों के लिए नियोग का ही विधान ठीक समझते थे, परन्तु शूद्रों के लिए पुनर्विवाह को ही शास्त्र सम्मत मानते थे । मेरठ से चलकर आर्य पथिक कौल (अलीगढ़) में पहुंचे । उपनगर बरौठा में उन्हीं दिनों आर्य पथिक स्थापित हुआ था, वहां १९ जनवरी १८९० को व्याख्यान दिया जिसमें प्रायः राजपूत अधिक सम्मिलित हुए और आर्य समाज को २० नये सभासद मिले । २१ और २२ जनवरी को खास अलीगढ़ में दो व्याख्यान देकर आगे चल दिये ।

इसके पश्चात् आर्य पथिक संयुक्त प्रान्त और पंजाब के नगरों में सद्धर्म का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द के जीवन संबंधी घटनाएं लिखते रहे, और भ्रमण करते हुए बीमार होकर अगस्त सं० १८९० के मध्य भाग में जालन्धर पहुंचे । यहां पहुंचकर उनको ज्वर बड़े जोर से चढ़ा । लाला देवराज शान्ति सरोवर पर एकान्त में उनका डेरा कराया था ।

एक दिन कचहरी से ३ बजे ही लौटकर मैं पं० लेखराम जी को देखने चला गया । पंडित जी चारपाई पर बैठे हांप रहे थे और आंखों से ज्वर १०५ दर्जे से बढ़ा हुआ मालूम होता था । मैंने नमस्ते की, उत्तर न मिला, मैंने पीठ के पीछे हाथ डालकर लेटना चाहा, मेरी बांह जोर से झटक दी और क्रोध में

भरे हुए बोले - 'बस साहेब ! मै यहां नहीं ठहरूंगा। यह आर्य गृह नहीं है।' मैने पूछा - 'पंडित जी क्या हुआ ?' क्रोध से रुक-रुककर बोले - 'पहले लाला देवराज जी को बुलाओ। मैं पीठ पीछे बात करना पाप समझता हूं' लाला देवराज जी के लिए आदमी दौड़ाया गया। वह शीघ्र ही पहुंच गये। धर्म वीर के होंठ फड़कने लगे और बोले - 'आप काहे के आर्य हो इस तरह 'ओ३म्' भगवान की हतक कराते हो।' इतने में मैंने वहां नियत हुए भृत्य को अलग ले जाकर पूछा तो पता चला कि मामला है क्या। पंडित लेखराम ज्वर से पीड़ित होकर चारपाई पर पड़े 'ओ३म्' 'ओ३म्' बोल रहे थे कि एक जन्म के ब्राह्मण का लड़का वहां आ पहुंचा। चारपाई के सामने कुछ दूर गमले पड़े थे। तीन चार गमलों के ऊपर 'ओ३म्' शब्द लिखा हुआ था। ब्राह्मण के लड़के ने जूता उतार कर कुछ गाली बक, गमले पर लिखे 'ओ३म्' पर जूते लगाने शुरू किये, पंडित जी से सहन न हुआ, दुष्ट की ओर लपके। लड़का भागा, पीछे स्वयं भी भागे। भला नटखट लड़के को ज्वर से पीड़ित लेखराम कैसे पकड़ सकते। जब वह आंखों से ओझल हो गया, तो हांपते हुए लौटे और चारपाई पर बैठ गये।

मैंने लौटकर पंडित जी को शान्त करना चाहा, और कहा-'पंडित जी भला देवराज जी का क्या अपराध है। उस शैतान को क्या इन्होंने बुलाया था!' 'उत्तर मिला-क्यों नहीं गमले को ऊंची जगह पर रखा जहां लड़के का हाथ न पहुंच सकता। ईश्वर जानता है मैं यहां नहीं ठहरूंगा।'

देवराज जी के नम्र उत्तर पर और भी बिगड़ने लगे तब मैंने उनको भेजकर पंडित जी को लेटा दिया और मुट्ठी चापा करके सुलाया। यह घटना जहां आर्यपथिक की निर्बलता को प्रकट करती है, वहां साथ ही यह भी जतलाती है कि अपने सिद्धान्तों के लिए उनके हृदय में कैसी भक्ति थी।

दो सप्ताह तक पंडित लेखराम ज्वर से पीड़ित रहे। ज्वर उतरते ही निर्बलता को सर्वथा भुलाकर उन्होंने २९ अगस्त १८७० के दिन पहला व्याख्यान दिया। फिर ३१ अगस्त को दूसरा व्याख्यान सद्धर्म विषय पर स्थानीय आर्य समाज के साप्ताहिक अधिवेशन में दिया। उसी समय नकोदर से समाचार आया कि वहां का गिरदावर कानूंगो, जो कुछ काल से महम्मदी हो गया था, अपने शंशय निवृत्त करना चाहता है। दूसरे दिन ही पंडित जी निर्बलता की परवाह न करते हुए, इक्के की सवारी से बहुत से आर्य भाईयों के सहित नकोदर पहुंचे। चार दिन बराबर धूमधाम से व्याख्यान होते रहे।

एक साधु और एक पौराणिक पंडित के साथ मूर्ति पूजा विषय पर शास्त्रार्थ भी होता रहा, जिसमें दोनों निरुत्तर हो गये। अन्तिम दिवस २५ सभासद बनाकर आर्य समाज स्थापित किया।

जालन्धर से लाहौर पहुंचकर आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान को मिले और फिर सीधे सहारनपुर पहुंचे। वहां से १२ सितम्बर को कानपुर में ऋषि जीवन संबंधी अन्वेषण करते रहे और वहां बड़ी जनउपस्थिति में कई व्याख्यान दिये। सृष्टि उत्पत्ति विषय पर जो अन्तिम व्याख्यान था उसकी बहुत ही प्रशंसा हुई।

कानपुर से पंडित लेखराम सीधे प्रयाग पहुंचे। प्रयाग में ही उन दिनों श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज का स्थापन किया हुआ वैदिक-यंत्रालय भी था और पंडित भीमसेन और पंडित ज्वालादत्त भी उसमें काम करते थे। यहां पंडित लेखराम एक मास तक पत्र व्यवहार देखते रहे। इसी समय कुछ प्रूफ देखते हुए आर्य पथिक को पंडितों की पोपलीला का पता लगा, वेद भाष्य का एक छपा हुआ अंक जलवा दिया और उसका संशोधन करा कर फिर से छपवाया। अपने पाठकों को समझाने के लिए यह आवश्यक है कि वेदभाष्य का संस्कृत भाग ऋषि दयानन्द का अपना लिखवाया हुआ है। जिन पंडितों ने मूल संस्कृत भाष्य में भी हस्तक्षेप करने से संकोच नहीं किया था वे भला भाषार्थ में कब चूकने वाले थे, जहां सारा काम ही उनके हाथों में था। यह पंडित लेखराम के हलचल डालने का परिणाम था कि भेदभाष्य से अंकों के अवलोकन का भार कुछ प्रसिद्ध आर्य पुरुषों पर डाला गया।

मिर्जापुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव का समाचार सुनकर पं० लेखराम २४ अक्टूबर १८९० ई० को उधर चल दिये। पहले दिन हवन के पश्चात् उसी विषय पर पंडित लेखराम का युक्ति-युक्त, सारगर्भित व्याख्यान हुआ मेरे संवाददाता लिखते हैं कि ऐसा जबरदस्त व्याख्यान मिर्जापुर निवासियों ने पहले कभी नहीं सुना था। उसी दिन शाम को धर्म विषय पर व्याख्यान हुआ। दूसरे दिन आर्य समाज के दस नियमों पर अपना प्रसिद्ध व्याख्यान दिया जिसको सुनकर बाल वृद्ध सभी आर्य समाज के गुण गाने लगे।

आर्य समाज के सभासद एक कलवार थे। पंडित जी ने उन्हें समझाया कि जब वैश्य का काम करते हो तो यज्ञोपवीत से क्यों वंचित हो। सभासद ने उत्तर दिया - 'महाराज ! मेरा यज्ञोपवीत कौन करायेगा ?' वहां उत्तर में क्या देर थी। 'मैं कराऊंगा, देखूं कौन सा आर्य समाजी पंडित है जो सम्मिलित न होगा।' बस फिर क्या था। यज्ञोपवीत का समय नियत किया

गया । न केवल नगर के प्रसिद्ध लोग ही सम्मिलित हुए प्रत्युत पंडित घनश्याम और रामप्रकाशादि जन्म के ब्राह्मण पंडितों ने स्वयं संस्कार कराया और धर्मवीर लेखराम के धैर्य देने पर बिरादरी आदि की धमकियों की कुछ भी परवाह न की ।

मिर्जापुर के एक वकील बड़े कट्टर मौलवी थे और साथ ही शहर के गुण्डों के सरदार । मिर्जापुर अपने गुण्डों के लिए प्रसिद्ध है । काशी तो गुण्डों के लिए जगत विख्यात है, किन्तु मिर्जापुर का लोहा भी उसने माना हुआ है। काशी की कंजरी का एकपद है ।

'काशीजी में सोंटा चलेगा मिरजापुर तलवार' ।

मिर्जापुर के गुण्डों के सरदार मौलवी वकील एक दिन पंडित लेखराम के साथ मजहबी छेड़छाड़ के लिए पहुंचे । भला आर्य मुसाफिर के सामने ठहरना कुछ हंसी ठट्ठा था ? थोड़ी देर में निरुत्तर होकर चले गये । दूसरे दिन मुबाहसे की तैयारी करके आये आर्य समाज के प्रधानादि ने उनकी नियत बद देखकर अस्वीकार किया, किन्तु धर्मवीर ने निर्भय होकर शास्त्रार्थ करना स्वीकार कर लिया । शहर में हुल्लड़ मच गया । आर्य भाइयों ने पंडित जी को बाहर जाने से मना किया किन्तु उन सबने सायंकाल को आश्चर्य के साथ देखा कि धर्मवीर अकेले डण्डा हाथ में लिए, पगड़ी का शमला छोड़े, घूमने जा रहे हैं ।

मिर्जापुर से पंडित लेखराम काशी को गये और मालूम होता है कि दो मास तक वहां ही आन्दोलन करते रहे । काशी के पंडितों के आर्य पथित ने बड़े चक्कर लगाये और पौराणिक पंडितों के विरोध का बराबर हाजिर जवाबी से मुकाबिला किया ।

सं० १८९१ ई० के जनवरी मास में लेखराम काशी से चल दिये । दो दिन रास्ते में डुमरांव राज में निवास करके १७ जनवरी, १८९१ के दिन दानापुर पहुंचे ।

१७ जनवरी से १२ फरवरी तक दानापुर, बांकीपुर और पटना में ही काम किया । इन स्थानों में व्याख्यान भी हुए किन्तु बड़ी मनोरंजक वह वृत्तान्त पत्रिका है, जो डाक्टर मुन्नीलाल शाह पटना आर्य समाज के सामयिक प्रधान ने मेरे पास भेजी थी । अतः यह पत्रिका बहुत समाचार पत्रों तथा धर्मवीर आर्य पथिक के जीवन वृत्तान्तों में छप चुकी है और अतः मुझे भी आगे चलकर इसमें लिखित विषयों पर अधिक प्रकाश डालता है, अतएव उस वृत्तान्त पत्रिता को डाक्टर शाह के शब्दों में ही मुद्रित कर देता हूं । डाक्टर शाह लिखते हैं :-

'जिन दिनों श्रीमान पंडित लेखराम जी श्री १०८ श्रीमद्दयानन्द सरस्वती जी महाराज का जीवन वृत्तान्त संग्रह करते हुए दानापुर से बांकीपुर पधारे थे और इस दीन पुरुष के निज गृह पर आ विराजे, उस समय यह पुरुष मेडिकल क्लास का विद्यार्थी और बांकीपुर आर्यसमाज (बादशाही गंज) का मंत्री था। श्रीमान् पंडित जी बांकीपुर में लगभग ९ दिन के ठहरे, इस बीच उनके मकान से एक तड़ित-समाचार समाज के नाम अनायास पहुंचा। तार द्वारा समाज से जिज्ञासा की गई थी कि पंडित जी जीवित है या नहीं ? दुर्जन यवन ने खबर भेजी थी कि पंडित लेखराम मारे गये !!'

'इस अपूर्व घटना का कारण मैं पंडित जी से पूछा। पंडितजी ने उत्तर में यही कहा कि प्रायः यवन लोग ऐसा ही अमंगल समाचार भेजा करते है। अस्तु, तार का जवाब, श्रीमान् पंडितजी, के जीवित रहने का उसी क्षण भेजा गया परन्तु मुझको उस दिन से यवनों के कुटिल वर्त्ताव का अशुभ ख्याल खटकने लगा। दूसरे दिन, पंडितजी ने मुझको अधिक चिन्तित और उदासीन पाकर पूछा कि आप आज मलिन देख पड़ते है। उत्तर में मैंने यही निवेदन किया कि महाराज ! ऐसा न हो कि किसी समय में आपके ऊपर यवनों का आघात पहुंच जावे ! आपको उचित है कि इस असभ्य मूर्ख कौम के लोगों से सोच विचार के वर्त्ताव रखना। पंडित जी हंसकर कहने लगे 'मंत्रीजी ! मृत्यु एक दिन अवश्य ही है किन्तु सच्चे धर्म के लिए शहीद होने के बराबर कोई दूसरी मृत्यु नहीं-तवारीख पढ़ो और देखो कि इस जमाने के पर्दे पर जिन - जिन लोगों ने अपने धर्म के लिए गला दिया है, उस कर्म का कैसा प्रभावशाली उत्तम परिणाम निकला है-बस, इन यवनों के विषय में अधिक उद्विग्न होने की कोई आवश्यकता नहीं-ऐसे तो ये लोग मुझको गालियां देते, पत्थर फेंकते, हमारी तंसनीफ की हुई किताबें जलवाते, जगह-ब-जगह यवन मत के पोल, इन दो किताबों (तकजीब-बुरा-हीन अहमदिया वानुसखे-खब्त-अहमदिया) के द्वारा खुल जाने से अभियोग खड़ा करवाने और नाना प्रकार के कुटिल वर्त्ताव बराबर उत्पन्न करने की कुचेष्टा किया करते हैं परन्तु मैं इन पर कुछ ध्यान नहीं देता। हमलोगों को उचित है कि अपना कर्त्तव्य कर्म पालन करने में किसी प्रकार की त्रुटि न दिखलावें।

मैंने पुनः पूछा पंडितजी सत्यार्थ- प्रकाश का फारसी अनुवाद क्यों नहीं करते ?

उत्तर में पंडितजी ने कहा - सोच तो रहा हूं कि स्वामीजी महाराज का जीवन चरित्र समाप्त कर सत्यार्थ-प्रकाश का फारसी तर्जुमा कर यवन लोगों के मुख्य प्रदेशो की ओर प्रस्थान करूं।

मैंने पुनः पूछा कि मुख्य प्रदेशों से आपका क्या अभिप्राय है ?

पंडितजी ने जवाब दिया कि अफगानिस्तान, परशिया, अरेबिया, मिश्र, तर्किस्तानादि देशों में भ्रमण कर वैदिक धर्म का प्रचार करना ही हमारा मुख्य अभिप्राय है ।

मैंने पूछा - 'क्यों पंडितजी ! बिना प्रतिनिधि की आज्ञा आप कैसे जायेंगे ।'

मंत्रीजी मैं प्रतिनिधि के अधीन होकर जाने की इच्छा नहीं करता, वरन् स्वतंत्रता के साथ उपदेश करना चाहता हूं ?

'पंडितजी ! इन यवन देशों में आप बिना प्रतिनिधि की सहायता के अपनी आजीविका किस प्रकार करेंगे ?'

'मंत्रीजी ! मैं चिकित्सा द्वारा अपनी जीवन-वृत्ति धारण करूंगा ।'

'पंडितजी ! क्या आपने इसमें कुछ परिश्रम किया है ?'

'मंत्रीजी ! कुछ किया है और शनैः शनैः कर रहा हूं । देखों हमारे पास बहुत से मुफीद नुसख जमा हैं । जब में एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाता हूं तो चिकित्सा शास्त्र के जानने वालों से प्रायः मुलाकात किया करता हूं और जो-जो मुफीद नुसख उनके पास होते है । चन्द उनमें से नोट कर लेता हूं ।'

इसी अवसर में पंडित जी ने नोट बुक निकाल कर मुझको भी (प्रार्थना करने पर) दो चार नुसखे धातु आदि के विषय में लिखवा दिये ।

पंडितजी ! कल दिन एक सनातनी पौराणिक के यहां जलसा है, इसमें अनेक पंडितगण दूर-दूर देश के आये हैं । उन्होंने मुझको सूचना भेजी आप भी अपने पंडित के सहित आइये । सो इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? श्रीमान् पंडित जी ने उत्तर दिया कि अवश्य चलना चाहिए - तदनुसार हम लोग दूसरे दिन पौराणिकों के जलसे में शरीक हुए । पंडितजी का एक व्याख्यान अवतारादि कल्पित विषय के खंडन पर ऐसा प्रभावशाली उत्तमता से हुआ कि पौराणिको को चकाचौंध लग गया, उनमें से कोई निरक्षर लंठ कषाय वस्त्रधारी स्वामी दयानन्द के विरुद्ध अण्ड-बण्ड बकने लगा पर पंडितजी ने थोड़े ही समय में उसका मुंह बन्द कर दिया : तत्पश्चात् संध्या को हम लोग अपने स्थान पर लौट आये ।

'प्रतिदिन स्वर्गवासी पंडित लेखराम जी से धर्म संबंधी विषयों के ऊपर बातचीत होते-होते एक दिन उन्होंने पूछा कि मंत्री जी ! ४० चालीस पारे का कुरान आपने देखा या नहीं ? मैंने उत्तर दिया नहीं । पंडितजी कहने लगे कि मैं इस पुस्तक की खोज में बहुत दिनों से हूं पर अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई । मैंने निवेदन किया कि इस स्थान पर एक वृहत्त कुतुबखाना (Library) मौलवी

खुदाबक्श खाँ बहादुर का है। इस कुतुबखाने के बराबर कोई दूसरी इधर-उधर नहीं है, प्रायः पुस्तकें उनके नबियों के और अरब मुल्क के प्राचीन मौलानों के तफनीफ किये हुए है, सो इसको आप चलके मुलाहिजा कीजिए शायद वह किताब मिल जाये। पंडितजी समाचार सुनते ही बड़ी प्रसन्नता और हर्ष-पूर्वक उसी समय मुझको लेकर कुतुबखाने को आये और किताबें देखना आरम्भ किया, ईश्वर की कृपा से वही ४० पारे का कुराम जिसकी खोज में इतने दिनों से इच्छुक हो रहे थे, प्राप्त भया। पंडितजी ने प्रायः यह मुख्य - मुख्य विषयों को पिछले १० पारो में से नोट कर लिया और भी बहुत सी बातें अपनी डेली डायरी (रोजनामचे) में दर्ज की। इस कार्यवाही को देखकर चन्द यवन लोगों ने जो वहां बैठे थे पंडित जी का नाम व तारीफ मुझसे पूछा पर मैंने किसी कारण वश नाम नहीं बतलाया। इसी क्षण में कुतुबखाने के मालिक भी पहुंच गये। उन्होंने अपने मौलवियों से सुना कि अमुक पंडित ने कुरान के (४० पारे) के बहुत से विषय नोट किये। मालिक कुतुबखाना उस ३० पारे के कुरान के विषय में यों कहने लगे कि यह किताब बड़े कठिनता से प्राप्त भया है, अर्थात् जब वह पेशावर गये थे तब एक प्रतिष्ठित मौलवी ने कई सहस्र रुपये लेकर बेचा था। उन मौलवी ने मालिक कुतुबखाने से यों बयान किया था कि यह कुरान परसिया (ईरान) के बादशाह के दीवान ने अफगानिस्तान (काबुल) में भेजा था, उस आदमी से मुझको प्राप्त हुआ। अस्तु, पंडितजी से और भी बातें होने लगी, पंडितजी कार्य समाप्त होने पर अधिक न ठहरें और हम लोग अपने डेरे पर बातचीत करते हुए लौट आये।

'दूसरे दिन हम लोग खड्गविलास नामक यंत्रालय में पहुंचे। समाचार मिला था कि उस प्रेस में 'कवि-बचन-सुधा' का, जिसको बाबू हरिश्चन्द्र काशी से प्रकाशित करते थे, पूरा-पूरा फाइल है ? सुतरां पंडित जी ने फाइल को मांगा और उन लोगों ने भी कृपया दे दिया। पंडितजी की जो कुछ नोट करना था सो सब लिख लिए, इस पत्र में स्वामीजी के विषय में अनेक उत्तम-उत्तम विषय प्रकाशित हुए थे, हुगली शास्त्रार्थ इसी पत्र में प्रथम-प्रथम ज्यों का त्यों छपा था।

**'स्वामीजी का भ्रमण वृत्तान्त** जब पंडितजी पटने का संग्रह कर चुके, तब कलकत्ता प्रस्थान करने की तैयारी की। जब तक पंडितजी यहां ठहरे तब तक सभसदों को पूर्णरूप से उत्साह देते रहे। आपके कई व्याख्यान पब्लिक में हुए जिनका असर बहुत ही लाभकारी हुआ। पंडित जी जब कोई ऐसी बात सुनते थे जो उनकी आत्मा को प्रिय न होती थी तो उस पुरुष से बहुत शीघ्र रंज हो जाते थे, परन्तु साथ ही यह रंज बहुत क्षणिक रहता था। कलकत्ता में

बराबर पंडितजी के साथ रहा और बहुत सी शिक्षा उनसे प्राप्त की - आपको तवारीख का बड़ा शौक था, अतएव बहुत से विषय का विस्तृत ज्ञान आप हासिल किये हुए थे।'

१३ फरवरी सं० १८९१ के दिन आर्यपथिक बांकीपुर से हावड़ा जाने वाली गाड़ी में सवार हुए और १४ फरवरी को कलकत्ते पहुंचकर आर्यावर्त्त समाचार पत्र के कार्यालय में डेरा किया।

इसी वर्ष १२ अप्रैल को हरद्वार के कुम्भ का नहान और एक मास पहले ही बड़ा भारी मेला लगने वाला था। ऋषि दयानन्द के परलोक गमन के पश्चात् यह पहला ही कुम्भ था और मैंने इस अवसर पर प्रचार के लिए बड़ा बल दिया था। मेरे लेखों को कलकत्ते में पढ़कर आर्यपथिक को भी बहुत जोश आया। उन्होंने ७ मार्च १८९१ के आर्यावर्त्त में मेरे लेख के साथ सर्वथा सहमत होकर मुझे आज्ञा दी कि उनके हिसाब में से ५) आर्य समाज जालन्धर के कोषाध्यक्ष से लेकर कुम्भ प्रचार फण्ड में दाखिल कर दूं। पंडित लेखराम के लेख पर पंजाब और संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभाएं भी जाग उठीं और मुझे आज्ञा हुई कि प्रचार का प्रबंध करने के लिए हरद्वार चला जाऊं। मेरे हरद्वार पहुंचने के तीन दिनों के पश्चात् ही पंडित लेखराम जी कलकत्ते से ५०) चन्दा करके साथ लिए हुए पहुंच गये थे और जब कार्यवशात् मुझे प्रचार के बीच में से ही जालन्धर लौटना पड़ा तो मेरे निवेदन पर पंडितजी ने राजकुमार जनमेजय को प्रबंध के काम में बड़ी सहायता दी थी। पंडित जी इससे पहले मुझे साधारण परिचित आदमियों में समझा करते थे, परन्तु कुम्भ प्रचार के लिए मेरी अपीलों को पढ़कर वह मुझसे अधिक प्रेम करने लग गये थे। वह ऋषि दयानन्द के बड़े भक्त थे और ऋषि के चरणों में मेरी भक्ति देखकर ही आर्यपथिक मेरे अधिकतर समीप हो गये।

कुम्भ प्रचार समाप्ति पर पं० लेखराम मेरे पास जालन्धर आये और आर्य प्रतिनिधि सभा की आज्ञानुसार कुम्भ प्रचार का हाल एक उर्दू, ट्रैक्ट की शकल में छपवाया।

लाहौर में पहुंचते ही समाचार मिला कि सिन्ध हैदराबाद में आर्य जाति के कुछ भूषण महम्मदी तथा ईसाई मतों की ओर झुक रहे हैं। इस पर आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान की आज्ञा पाकर पंडित लेखराम ने उधर को प्रस्थान किया।

सक्खर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए पंडित लेखराम वैशाख १९८४ के अन्त में चले गये। स्वामी (वर्तमान पंडित)

पूर्णानन्द जी भी 'द्वाबा गुरुदासपुर उपदेश मंडली' की ओर से उक्त उत्सव में सम्मिलित थे । वहां विस्तृत समाचार मिला कि महम्मदी मत का (सिन्ध) हैदराबाद में जोर है और साथ ही यह भी पता लगा कि एक आमिल रईस अपने दो लड़कों सहित महम्मदी मत स्वीकार करने को तैयार है । इससे बढ़कर यह प्रसिद्ध था कि कई युवक ईसाई मत की ओर अधिक झुक रहे है।

आर्यपथिक यह समाचार सुनकर चुपके से कैसे लौट सकते थे ? श्री पूर्णानन्द जी सिन्धी भाषा जानते थे, इसलिए उन्हें साथ लेकर पंडित लेखराम ने हैदराबाद का रास्ता पकड़ा । ज्येष्ठ १९४८ के आरम्भ में ही ईसाई और महम्मदी मतों के खंडन की हैदराबाद में धूम मच गई । ईसाई मत से युवकों को हिलाने के लिए आर्यपथिक ने उसी स्थान में एक लघु पुस्तक तैयार की जिसका शीर्षक रक्खा - 'क्या आदम और हव्वा हमारे बालदैन (माता-पिता) थे ? इस लेख में युक्ति तथा प्रमाण द्वारा सिद्ध किया कि मां-बाप की सन्तान सारी मनुष्य सृष्टि सिद्ध नहीं होती । इसी प्रबल लेख का सार अपने व्याख्यान में देकर पंडित लेखराम ने ८ या १० आर्य जाति के युवकों को ईसाई मत के गढ़े से गिरते-गिरते खींच लिया।

सिन्धी रईस जो महम्मदी मत की ओर झुक रहे थे । दीवान सूर्यमल जी थे । आर्यपथिक के हैदराबाद पहुंचने पर वह स्वयं तो अपने इलाके अलीपुर की ओर चले गये, किन्तु उनके दोनों पुत्रों को पंडित लेखराम ने जा घेरा । मेरे पास उस समय का सारा पत्र व्यवहार मौजूद है जिससे पंडितजी की हिम्मत और उनके धर्मरक्षा में उत्साह का पता लगता है । हैदराबाद पहुंचते ही हमारे धर्मवीर दीवान सूर्यमल के पुत्रों के पास गये । बड़े का नाम दीवान मेवाराम था । ये युवक पंडित लेखराम को टालना चाहते थे, किन्तु लेखराम भला कोई टालने वाले आसामी थे ? दूसरी तीसरी, चौथी बार फिर गये और आग्रह किया कि जिस मौलवी पर उन्हें पूर्ण विश्वास हो उसके साथ मुबाहसा कराके सत्या-सत्य का निर्णय कर लें । फिर पत्रों की भरमार कर दी । तब मजबूर होकर मौलवियों को सामने आना पड़ा । मौलवी सैय्यद महम्मद-अलीशाह के साथ सबसे पहला मुबाहसा हुआ । विवादास्पद विषय यह था कि महम्मद साहब के पास मोजजे (करामात) थे तब दूसरे मौलवियों ने पत्र व्यवहार शुरू किया । मौलवी महम्मदसद्दीक, हाजी सैय्यद-गुला-महम्मद, मुफ्तीसय्यद पाजिलशाह, सैय्यद हैदरअलीशाह-इन चार महाशयों की ओर से उर्दू के पत्रों के उत्तर फारसी भाषा में दिये । इस पत्र व्यवहार के पढ़ने से पंडित लेखराम की योग्यता का बड़ा उत्तम प्रमाण मिलता है । इस बड़े प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि दीवान सूर्यमल के दोनों पुत्रों को महम्मदी मत से घृणा हो गई और

एक कुलीन आर्य परिवार की रक्षा का भार आर्यपथिक को प्राप्त हुआ। यह जानना इस स्थान में मनोरंजक होगा, कि प्रसिद्ध ब्राह्मसमाजी वक्ता श्री प्रिंसिपल वास्वानी एम०ए० उन दिनों हैदराबाद में विद्यार्थी थे और उनके दिल में अपने धर्मशास्त्रों का गौरव पंडित लेखराम से बातचीत करने और व्याख्यान सुनने से बैठा था।

लाडकाना के कुछ बलात्कार से मुसलमान किये हुओं का प्रार्थना पत्र पंडित जी के पास हैदराबाद में ही पहुंचा था। उन लोगों ने शुद्ध होकर आर्य समाज में प्रविष्ट होने की प्रार्थना की थी। बीमार हो जाने के कारण उस समय पंडित लेखराम उनकी प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। परन्तु लेखराम का शुभ संकल्प फिर फलीभूत हुआ और अनेक कष्ट सहन करके उनमें सैकड़ों भाई वैदिक धर्म की शरण में आकर परमार्थ रूपी धन को संचय कर रहे हैं। हैदराबाद (सिन्ध) में ही पंडित लेखराम ने 'क्रिश्चियन मत दर्पण' की तैयारी शुरू कर दी थी और सृष्टि उत्पत्ति तथा उसके इतिहास पर जो गन्वेषणा पूर्वक व्याख्यान उक्त पंडित जी दिया करते थे उस सबका विस्तार पूर्वक वर्णन 'तारीख ए-दुनिया' नामी ट्रैक्टरूप में उन्हीं दिनों तैयार किया गया था। सितम्बर (१८९१ ई०) मास में पिछला ट्रैक्ट छप चुका था, जिसका समाचार २९ भाद्रपद, सं० १९४८ के 'प्रचारक' में प्रकाशित हुई थी।

मालूम होता है कि सिन्ध हैदराबाद से लौटकर पंडित लेखराम अधिकतर पंजाब में ही काम करते रहे। मान्ट-गुमरी आदि समाजों में व्याख्यान देकर लाहौर पहुंचे और वहां पौराणिक मतखण्डन के व्याख्यान के वार्षिकोत्सव के समय 'आर्य धर्म' पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा सारगर्भित व्याख्यान दिया। इसी व्याख्यान की प्रशंसा सद्धर्म प्रचारक में काम करते हुए मैंने देशभाषा के शार्टहैंड की आवश्यकता जतलाई थी।

नवम्बर के अंतिम सप्ताह में पंडित लेखराम लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित रहे जहां २९ नवम्बर को अंतिम व्याख्यान उनका हुआ। उसमें उन्होंने सारे संसार के मतों का मुकाबला करके सिद्ध किया कि केवल वैदिक धर्म मनुष्यों को शान्ति दे सकता है।

दिसम्बर के दूसरे सप्ताह में केशवानन्द उदासी के शोर मचाने पर पंडित लेखराम जी को तार देकर आर्य प्रतिनिधि सभा के मंत्री जी ने बुलाया और नाहन राज में भेजा। साधु केशवानन्द के साथ महाराजा साहब के सामने बातचीत भी हुई और फिर आर्यपथिक के चार व्याख्यान हुए जिसके पश्चात् नाहन में आर्य समाज की स्थापना हुई।

O

# राजपूताना के साथ विशेष संबंध

ऐसा मालूम होता है कि नाहन के शास्त्रार्थ और वहां आर्य समाज स्थापित करने के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिन और पंजाब में काम करते रहे क्योंकि २१ मार्च १९९२ को उन्होंने मियानी (जिला शाहपुर) में नवीन समाज स्थापित किया था, और फिर राजपुताने की ओर चले गये। पहली बार जो संबंध बाबू रामविलास शारदा जी तथा अजमेर के अन्य आर्य पुरुषों से हुआ था वह इस बार अधिक दृढ़ किया। विशेषतः स्वर्गवासी वजीरचन्द्र जी के वहां होने से आर्यपथिक को उस प्रान्त से बड़ा प्रेम हो गया था। इस बार (जून १८९२ ई०) तब पंडित लेखराम बराबर राजपूताने में ही ऋषि जीवन की घटनाओं का पता लगाते रहे ! राजपूताने के सर्व प्रसिद्ध रईसों, ठाकुरों और प्रतिष्ठित पुरुषों से मिलकर जो वृत्तान्त आर्यपथिक ने लिखा था वह सब जीवन चरित्र में छप चुका है।

इन दिनों की दो घटनाएँ पंडितजी के स्वभाव को दो अंशों में स्पष्टता से प्रकट करती है। बूंदी राज्य में जाकर ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी ने शास्त्रार्थ की धूम मचा दी थी। आर्य पुरुषों को जब यह पता लगा तो उन्होंने दोनों संन्यासी महात्माओं की सहायता के लिए आर्यपथिक को भेजा। कुछ लोगों ने डराया भी कि रियासत का मामला है, कहीं कष्ट न मिले, परन्तु धर्म युद्ध का नरसिंहा जब बज गया तो लेखराम को रोकने वाली कोई भी शक्ति नहीं थी। अकेले सिंह की न्याई सीधे बूंदी में पहुंचे। वहां जाकर पता लगा कि महाराज साहेब के विशेष शास्त्रार्थ से इनकार कर देने पर दोनों संन्यासी महात्मा लौट गये हैं। पंडित लेखराम भी जहाजपुर लौट आये, जहां सायंकाल को पहुंचते ही इनके व्याख्यान का विज्ञापन जहाजपुर के हाकिम ने (जो आर्य सामाजिक थे) घुमा दिया। रात को व्याख्यान में सर्वसाधारण के साथ फौज के सिपाही और अफसर भी आये, उनमे से पैदल का सूबेदार मुसलामन था। आर्यपथिक ने अन्य विषयों के साथ महम्मदी मत का भी कुछ कड़ा खण्डन किया। इस पर मुसलामन सूबेदार ने दिल्लगी में कहा - 'ऐसी ही तीस मारखां थे तो बूंदी से क्यों भाग आये।' हाजिर जवाब लेखराम को सोचने की जरूरत न थी, उत्तर दिया-'विपक्षी शास्त्रार्थ से भाग गया और हम लौट आये, कुछ आं हजरत (अर्थात् महम्मद साहब) की तरह हिजरत करके

(भागकर) तो नहीं आये ।' इस पर मुसलमान सूबेदार की आंखे लाल हो गई और उसने तलवार के कब्जे पर हाथ रक्खा है । वीर लेखराम ने गरजते हुए कहा —"मुझे तलवार की धमकी दिखाता है; अगर है पठान का तो तलवार निकाल कर मजा देख ।" हाकिम ने मुसलमान सूबेदार को अलग बैठा दिया और फिर किसी ने चूं तक न की ।

अजमेर के संबंध में यहां बाबू रामविलास शारदा जी के पत्रों से कुछ भाग उद्धृत करता हूं जिससे आर्यपथिक के स्वभाव और काम पर बड़ा प्रकाश पड़ता है :-

स्वामी दयानन्द सरस्वती को छोड़कर, जिनके विषय में कुछ नहीं जानता क्योंकि मैं उन दिनों कालेज में पढ़ता था और आर्य समाज का सभासद नहीं था, मैं जितने संन्यासी तथा उपदेशक देखे हैं ऐसा सच्चा दृढ़ मोहकिक निर्लोभी, परिश्रमी, जितेन्द्रिय, अपने समय को व्यर्थ न खोने वाला एक भी मनुष्य नहीं देखा । व्याख्यान देने तथा लोगों की शङ्का समाधान करने के अलावा जो समय उनको मिलता था वह प्रायः पुस्तक देखने तथा वैदिक धर्म के विरोधियों को उत्तर देने में लगाया करते थे ।

आर्य समाजों की अन्दरूनी हालत पर निहायत अफसोस किया करते थे कि तुम्हारे लोगों में पोप घुसे हुए है जो मौका पाकर समाजों का सत्यानाश कर डालेंगे और वे पं० भीमसेन का नाम अकसर इस सिलसिले में लिया करते थे और उनकी हेर-फेर वाली इबारत पर अकसर अत्यन्त क्रोधित होते थे । लोग इस विषय में पंडितजी को कट्टर बतलाकर टाल दिया करते थे परन्तु जो लोग उनसे भले प्रकार विज्ञ थे वे जानते थे कि धर्मवीर आर्यपथिक का एक-एक शब्द ठीक था । पंडित जी से देश सुधार व वैदिकधर्म के प्रचार के विषय पर जब जब बातें होती तो आप फरमाया करते थे कि आर्यावर्त्त का उद्धार उस समय तक नहीं होगा जब तक कि लोग वेदों पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं करेंगे । नवीन वेदान्तियों व अन्य लोगों की दूरदर्शिता से यह ख्याल आमतौर से फैल रहा है कि उपनिषद् वेदों से आला है । भोले लोग यह नहीं जानते कि यह वेदों से ही निकले हैं । कई तो उनके सूक्त के सूक्त ही हैं । मेरा विचार उपनिषदों का तरजुमा करने का है जिसकी भूमिका में यह सब मसले हल करूंगा । और लोगों के दिलों में वेदों की बुजुर्गी बिठलाने का यत्न करूंगा शोक यह है कि पंडित जी के दिल की दिल ही में रही ।

'इस बात का विचार मुद्दत से था कि आर्य पुरुषों के पढ़ने योग्य पोपलीला से रहित निर्भ्रान्त मनु-भाषा-टीका छपवाई जावें । मैंने इस विचार को पंडित जी के सामने पेश किया तो आपने इसका भाषान्तर करना मंजूर किया, आप फरमाते थे कि २६ मनुस्मृतियां इकट्ठी की है और जो काश्मीर से

मनुस्मृति हाथ लगी है वह बहुत नायाब । आप पंडित गुरुदत्त जी के नोटों के विषय में भी कहते थे और फरमाते थे कि श्रीमान् शाहपुराधीशो ने भी, जिन्होंने तीन महीने तक मनुस्मृति को श्रीस्वामी दयानन्द सरस्वती जी से पढ़ा, था बहुत कुछ बातें बतलाई हैं । छपाई आदि के विषय में सब शर्तें निश्चित होने पर आपने कार्य आरम्भ कर दिया था और एक अध्याय का भाषान्तर भी कर दिया था जो उनके कागजों में मौजूद है और मेरे नाम से विज्ञापन भी लिख रक्खा था । इसके पश्चात् मैंने अपने शास्त्रोद्धार की स्कीम पेश की जिसमें वेदों, उपनिषदों, छः शास्त्रों का उपनिषद् भाषान्तर और महाभारत और बाल्मीकीय रामायण के सार व सूर्यसिद्धान्त, चरक सुश्रुत आदि का छपवाना बाद निकालन परिक्षिप्त श्लोकों के किया । आपने फरमाया कि मनुभाष्य के पश्चात् वे बाल्मीकिय रामायण को लेवेंगे जिसके लिए उन्होंने मसाला तैयार कर रक्खा था । आपका विचार एक प्राचीन इतिहास लिखने का भी था जो अंग्रेजी की Nineteenth Century के मुआफिक एक मासिक रिसाला निकालने का इरादा रखते थे जिसमें आर्यावर्त्त के सब विद्वान् आर्य भ्राता मजमून भेजा करें । अजमेर से भी दो एक नाम आपने लिखे थे । आपने वहां स्वामी जी के जीवन चरित्र के मुत्तालिक बहुत दिनों तक काम किया था और वहां के मशहूर हकीम पीर जी से थोड़ा सा मुबाहसा भी हुआ था जो कि इनकी बड़ी तारीफ किया करते थे । आप पादरी ग्रे, मौलवी मुरादअली, पंडित शिवनारायण जी शास्त्री आदि बहुत से लोगों से मिले थे जिसका पूरा-पूरा हाल स्वामीजी के जीवन चरित्र के लेखों से मिल रहा है । आपके अजमेर में कम से कम १५ व्याख्यान हुए होंगे जिनमें बावजूद लस्सानिय (Oratory) न होने के लोग बहुत संख्या में जमा होते थे और बहुत ही संतुष्ट होकर घर को जाते थे । इतिहास व प्राचीन तहकीकात से भरे हुए ऐसे व्याख्यान लोगों ने कभी न सुने और अब तक तारीफ करते हैं ।'

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम जी ने 'वैदिक विजय पत्र' से जिहाद विषयक लेखों को इकट्ठा करके 'रिसाला जिहाद' छपवाया था क्योंकि उसकी समालोचना १४ मई १८९२ के सद्धर्म-प्रचारक मे निकली थी ।

ऐसा मालूम होता है कि पंडित लेखराम जून के अन्तिम सप्ताह या जुलाई के आरम्भ में फिर राजपूताने से लौट आये थे क्योंकि उनके लिखे हुए 'कस्तूरी की प्राप्ति' विषयक दो लेख १३ जुलाई और २७ अगस्त के प्रचारक में दर्ज हुए है । पहला लेख भेजते समय पंडित लेखराम जी लाहौर में थे और दूसरा उन्होंने मुजफ्फरगढ़ आर्य समाज से भेजा था । २३ जुलाई १८९२ के प्रचारक में बखशी सोहनलाल (वर्तमान आनरेबल तथा रायबहादुर) के मांस भक्षण समर्थक लेखों का उत्तर भी आर्य पथिक का लाहौर से भेजा हुआ ही छपा

है। फिर ३ और १० सितम्बर के प्रचारक में वृक्षों में जीव संबंधी विचारपूर्ण दो लेख पंडित लेखराम के लहिया (जिला डेरा इस्माइलखां) से भेजे हुए छपे है। मालूम होता है कि डेराजात के जिलों में धर्म प्रचार करने के पश्चात् पंडित लेखराम सीबी (बिलोचिस्तान) मे स्वामी नित्यानन्द सरस्वती जी सहित पंडित प्रीतम शर्मा पौराणिक के साथ शास्त्रार्थ करने के लिए गये थे क्योंकि उनका वहां २२ जुलाई १८९२ को पहुंचना प्रचारक में छपा है।

प्रीतमदेव ने तो शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाना चाहा किन्तु उसी शाम को उससे १०० गज दूरी पर पंडित लेखराम का सिंहनाद सुनाई देने लग गया। पंडित प्रीतम शर्मा ने तो स्वामी नित्यानन्द जी के सामने आकर शास्त्रार्थ को क्वेटे के लिए मुलतवी किया और २४ जुलाई को चल दिया, परन्तु पंडित लेखराम जी चार-पांच दिनो तक स्वामी नित्यानन्द जी के साथ सीबी मे ही व्याख्यान देते रहे। फिर क्वेटे से होते हुए ११ सितम्बर को कसूर (जिला लाहौर) आर्य समाज में जाकर एक व्याख्यान दिया। २८, २९ सितम्बर को हम पंडित लेखराम को अमृतसर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। अक्टूबर मास के आरम्भ में पंडित लेखराम जी जालन्धर पहुंचे। उन दिनों छावनी में जाटों का रिसाला नम्बर १४ था जिसका अधिक भाग आर्य समाजी था पंडित लेखराम जी का व्याख्यान सदर बाजार में हुआ और फिर दो व्याख्यान चौदहवे रिसाले में हुए, वह दृश्य भूलने योग्य नहीं, क्योंकि मैंने भी आर्यपथिक के साथ-साथ वहीं व्याख्यान दिये थे। रिसाले का अपना बड़ा शामियाना लगाकर मण्डप खूब सजाया गया। छावनी के तीर-चार सौ श्रोताओं के मध्य चार-पांच सौ सवार वर्दी पहनकर अपने सरदारों सहित उपस्थित रहते थे। अंग्रेज आफिसर भी दोनों दिन व्याख्यानों में आते रहे और व्याख्यान सुनकर बड़े प्रसन्न होते रहे।

जालन्धर से पंडित लेखराम पोठोहार (पंजाब प्रान्त) में प्रचार के लिए गये। १६ अक्टूबर को उनका व्याख्यान आर्य समाज भवन (जिला जेहलम) में होना, समाचार पत्रों में छपा है।

इसके पश्चात् पता लगता है कि ऋषि दयानन्द के जन्म स्थली की तलाश में पंडित लेखराम फिर राजपूताने की ओर चल दिये। बहुत से विश्वस्त पुरुषों से पता लगा कि स्वामीजी का जन्म स्थान मोरवीराज में है, इसलिए अजमेर से आर्यपथिक अहमदाबाद को चल दिये। मैं बतला चुका हूं कि बाबूराम विलास शारदा जी पर आर्यपथिक का बड़ा विश्वास था इसलिए काठियावाड़ से उन्हीं के नाम पत्र लिखते रहे। उस समय के लिखे हुए तीन पोस्टकार्ड मुझे मिले है, पहला ३० अक्टूबर, १८९२ को मोरवी से भेजा हुआ है। उसमें बांकानीर के मार्ग से मोरवी पहुंचने का हाल लिखकर अपनी डाक महाशय काशीराम दुबे एम०ए०, हेडमास्टर मोरवी हाईस्कूल द्वारा मंगाई है

और साथ ही याचना की है कि पाडया मोहनलालादि से, स्वामी दयानन्द महाराज के जन्म स्थान के विषय में पूछ कर जो कुछ पता लग सके। जानने वालों से लिखवा भेजें।

दूसरा पोस्टकार्ड १५ नवम्बर को मोरवी की डाक में डाला गया। इसका अनुवाद यह है - 'एक पत्र आपका, एक बनवारी लाल जी का, एक श्रीस्वामी आत्मानन्दजी महाराज का, एक मास्टर बजीरचन्द्र जी का पहुंचकर समाचार ज्ञात हुए। टिनकारा में मैंने (ऋषि दयानन्द जी के जन्म स्थान की) बहुत ढूढ़ की, पता न मिला। लोग मोरवी खास का बहुत ख्याल करते है। अब वहां अन्वेषण कर रहा हूं ? १४ या १५ ग्रामों में ढूढ़ चुका हूं।.....मुझे १०, ११, १२, (नवम्बर १८९२) को ज्वर हुआ, बड़े ज्वर से, परन्तु अब सर्वथा नीरोग हूं।.....

पाडयाजी का कोई पत्र नही आया। वेद-भाष्य-भूमिका के विषय मे मैंने एक पत्र श्यामसुन्दर जी को लिखा था, फिर आप भी (उनको स्मरण करावें। जब से आया हूं कोई (अङ्क) सद्धर्म प्रचारक पत्र (का) नहीं आया। यदि हो सके तो चार (पिछले) अङ्क भेज दें....इस ओर छूआछात का बड़ा झगड़ा और ज्वर का जोर है, आर्य समाज से लोग सर्वथा अभिज्ञ हैं.....तीसरा कार्ड ९ दिसम्बर को राजकोट से चला। इसमें लिखा है - 'मैं २ दिसम्बर १८९२ से राजकोट में आया था। यहां आठ दिन रहा। यहां का हाल मालूम किया, परन्तु कोई हाल स्वामी जी की जन्म भूमि के संबंध में न मिला। आज फिर बांकानेर जाता हूं और कई दिन वहां रहूंगा।.....बांकानेर प्रान्त के विषय में ही लोगों को सन्देह है कि शायद स्वामी उसी प्रान्त के हों। दूसरे मोरवी और बांकानेर (एक दूसरे से) बहुत समीप है।.....यहां पहले आर्य समाज था, परन्तु अब चिरकाल से दूर हुआ है, कोई भी आर्य पुरुष यहां नहीं है। लोगो से बातचीत होती रहती है, उदेशकों की बहुत जरूरत है।'

पिछले दो कार्डों में एक और परिवर्तन देखा जाता है जहां पहले पत्र फिर लिफाफा दोनों फारसी अक्षरो में होते थे, वहां इसमें लिफाफा देवनागरी अक्षरों में लिखा हुआ है और कुछ काल के पश्चात् देखा जाता है कि संस्कृत या आर्य भाषा जानने वालो का नाम आर्यपथिक के पत्र आर्य भाषा में ही जाने लग गये थे।

इसी वर्ष 'क्रिश्चियन मतदर्पण' मेरठ के विद्यादर्पण प्रेस में छपकर तैयार हुआ जिसकी समालोचना १२ नवम्बर १८९२ के सद्धर्म प्रचारक में छपी है।

सं० १८९३ ई० के आरम्भ में ही पंडित लेखराम ने स्वामी दयानन्द के जन्म स्थान के अन्वेषण का काम समाप्त कर लिया था। यद्यपि इस समय टिकनारा से समीप ही जन्म स्थान का नया निश्चय नये आन्दोलन कर तो रहे है, तथापि आर्यपथिक ने जो निश्चय करना था उसे दृढ़ कर लिया और अजमेर लौट कर अन्तिम व्याख्यान दे कुछ और आन्दोलन करते हुए आगरे में पहुंचे।

वहां २५ फरवरी से १ मार्च सं० १८९३ ई० तक स्थानीय आर्य समाद के वार्षिकोत्सव पर तथा मित्र सभा में उनके व्याख्यान होते रहे । आगरा आर्य समाज के उत्सव में धर्म चर्चा के समय आर्यपथिक ने ऐसे सन्तोषजनक उत्तर दिये कि प्रश्नकर्त्ताओं को भी मानना पड़ा कि उनकी तसल्ली हो गई है।

आगरा से मालूम होता है कि पंडित लेखराम जी फिर राजपूताने की ओर अपने पुरुषार्थ का फल प्राप्त करने अर्थात् ऋषि जीवन के अन्वेषण का सारांश निश्चय करने के लिए चले गये क्योंकि २५, २६ मार्च १८९३ को उन्होंने जयपुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर दो बड़े ही जनप्रिय व्याख्यान दिये ।

इस समय पंजाब में धरू-युद्ध की अग्नि बड़े वेग से भड़क उठी थी और जिस आर्य प्रतिनिधि सभा और आर्य समाजों की संस्था के साथ पंडित लेखराम आर्यपथिक आर्य समाजों में नाम लिखाने के दिन से काम करते आये, उसकी अवस्था बड़ी डांवाडोल हो चली थी । यह निश्चय करना कि वास्तविक अपराध किस दल का था, और इस बात की मीमांसा करना कि द्वेषाग्नि का पहला पलीता किसने छोड़ा । इस समय अनावश्यक है । इस विषय के पाप-पुण्य का ठीक गलों में मढ़ना उस समय होगा, जब किसी निष्पक्ष लेखनी से आर्य समाज का इतिहास लिखा जायेगा, परन्तु यहां केवल इतना बतलाना है कि धरू-युद्ध के कारण एक ओर तो सर्वसाधारण आर्य जनता का समूह और संस्था का बल था, और दूसरी ओर यद्यपि जनसंख्या बहुत कम थी तथापि धन बल, राज-बल तथा नीति-बल अधिक था । सम्पत्ति भेद के सब कारणों में से उस समय भक्ष्याभक्ष्य का प्रश्न बहुत कुछ आगे बढ़ा हुआ था । स्त्रियों को उच्च शिक्षा देने का भी यद्यपि विरोध होता था, वैदिक-साहित्य की शिक्षा मात्रा पर भी यद्यपि मतभेद था तथापि मांस भक्षण वेद विरुद्ध पाप है या नहीं, इस विषय पर भारी युद्ध था ।

ऐसी विपत्ति के समय में पंडित लेखराम की पंजाब में बड़ ने भारी आवश्यकता प्रतीत हुई । प्रबल सांसारिक नीति का मुकाबला ढिलमुल विश्वासी केवल शान्ति का पाठ करने वाले स्वार्थी कैसे कर सकते ? जिस प्रकार राजर्षि-गोविन्दसिंह महाराज अपने विश्वास-पात्र खालसो के विषय में कह सकते थे कि-'सवा लाख से एक लड़ाऊं' और जिस प्रकार अकेले नैपोलियन की रण-भूमि में उपस्थित एक लाख सेना के तुल्य समझी जाती थी उसी प्रकार मानो ब्रह्मर्षि दयानन्द का आत्मा अदृश्य वाणी द्वारा आर्य जनता से कह रहा था कि आर्य समाज की परिधि में यदि सर्व प्रलोभनों से बचकर कोई धर्म की सेवा कर सकता है तो वह लेखराम है । धन, मान, प्रतिष्ठा, प्रशंसा के वशीभूत होकर कई प्रचारकों तथा प्रतिष्ठित पुरुषों को गिरते देख आर्य प्रतिनिधि सभा के सामयिक प्रधान ने आर्यपथिक पंडित लेखराम को पंजाब में बुला लिया ।

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के प्रधान का निवास स्थान जालन्धर शहर था, इसलिए राजपूताने से पंडित लेखराम सीधे जालन्धर नगर में पधारे। १८ अप्रैल को स्थानीय आर्य मन्दिर में ऋषि दयानन्द के जीवन पर व्याख्यान दिया और इस व्याख्यान में ही पहली बार बतलाया कि आर्य समाज के गुरु स्वामी विरजानन्द सरस्वती का जन्म स्थान कर्त्तापुर (जिला जालन्धर) के समीप एक ग्राम में है। इसी समाचार को २१ अप्रैल १८९३ के प्रचारक में जतलाकर मैंने लिखा था 'सचमुच एक महात्मा का स्वदेशी होना एक गौरव की बात है परन्तु जालन्धरियों को भली प्रकार याद रखना चाहिए कि यदि वे अपने आपको स्वामी विरजानन्द का स्वदेशी सिद्ध करना चाहते हैं तो उनको सम और दम की दृढ़ शिक्षा लेनी होगी।'

उसी समय आर्यपथिक पंडित लेखराम ने, प्रसिद्ध योगराज गूगल के बनाने वाले राय मूलराज बहादुर उप-प्रधान परोपकारिणी सभा से, सत्यार्थप्रकाश के उर्दू अनुवाद की आज्ञा मांगी थी, किन्तु मांस भक्षण के विरोधी पंडित लेखराम जी की, इस विषय में, अकृतकार्यता पर बड़ा शोक है, क्योंकि यदि उक्त पंडित जी सत्यार्थप्रकाश का अनुवाद उर्दू में कर जाते तो जो अशुद्धियां अब आर्य समाजियों को निरर्थक शास्त्रार्थ में फंसाती हैं उनके यह अनुवाद विमुक्त होता।

२८ अप्रैल १८९३ के प्रचारक से 'आर्य समाज की जरूरत' पर एक लेख-माला आर्यपथिक की ओर से आरम्भ हुई है। इस लेखमाला में ऐतिहासिक दृष्टि से आर्य समाज की आवश्यकता बतलाई गई है।

जालन्धर से लाहौर होते हुए पंडित लेखराम जेहलम आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए और शङ्कासमाधान में भाग लेने के अतिरिक्त उन्होंने बौद्धिक धर्म की श्रेष्ठता पर एक सारगर्भित व्याख्यान दिया। उससे पहले पंडित लेखराम औरंगाबाद और मियानी काला में व्याख्यान दे चुके थे।

जेहलम से छुट्टी लेकर पंडित लेखराम अपने निवास स्थानकहूटा में पहुंचे वहां एक मास तक रहे परन्तु वहां से भी लेख बराबर समाचार पत्रों में (विशेषतः प्रचारक में) भेजते रहे उसी स्थान में उनके पास दीवान टेकचन्द्र (वर्तमान कमिश्नर) का पत्र इङ्गलैण्ड से आया था। उस परजो नोट आर्य मुसाफिर ने कहूटे से लिख कर भेजा था वह जतलाता है कि आर्योपदेशक का आदर्श वह क्या समझते थे। पंडित लेखराम लिखते है - 'विविध भाषाओं में सच्चे धर्म की पुस्तकों का अभाव विविध भाषाओं द्वारा आर्य धर्म के उपदेश करने वालों की कमी, देशान्तरों में आर्य समाज का अस्तित्व अभाव के बराबर, धर्म पर जान न्यौछावर करने वालों की आवश्यकता में प्रति सैकड़ा एक सौ की कमी और उस पर घर की फूट-त्राहि मां ! त्राहि मां ! प्यारे भाइयों !

विचारो और समझो। (अंग्रेज) लोग सिविल सर्विस पास करके जब देखते है कि धर्म के प्रचार की जरूरत है तो झट उससे अलग हो धर्म के उपदेशक बनने के लिए प्रार्थनाएं करते है, फिर ईश्वर जाने स्वीकार हो वा न। इधर हमारे यहां की हालत वर्णन करने योग्य नहीं है.....हमारे उपदेशकों में, थोड़े विद्वानों के अतिरिक्त, कई ऐसे भी है जो भोजन भट्टो की सूची में जाने योग्य है, क्षमा कीजिए, मैं वा अन्य कोई समाजों को भली प्रकार जानने वाला उन्हें उपदेशक नहीं मानता, क्योंकि वह तो खाकियों में खाकी, उदासियों में उदासी, निर्मलों में निर्मल और संन्यासियों में स्वामी।'

'आर्य समाज की जरूरत' का शीर्षक देकर जो लेखमाला पंडित लेखराम ने इन दिनों सद्धर्म प्रचारक में छपवाई थी, उसमें वह कहते है - 'मई सन् १८८१ में जब लेखक (पं० लेखरामन) ऋषि दयानन्द की सेवा में अजमेर उपस्थित हुआ तब उन्होंने (ऋषि दयानन्द) कहा था कि आर्य समाज की ओर से एक अंग्रेजी मासिक या समाचार पत्र निकालना चाहिए, जिसमें वेदों के मंत्रों का अनुवाद देने के अतिरिक्त सार्वजनिक लाभ की बातें भी दर्ज हों।

**गृहस्थाश्रम में प्रवेश :**

वैशाख संवत् १९५० विक्रमी के आरम्भ मे पंडित लेखराम पूरे ३५ वर्ष के हो चुके थे उसी वर्ष के ज्येष्ट मास में छुट्टी लेकर अपने निवास स्थान ग्राम कहूटा में गये और अपनी आयु के ३६वें वर्ष के आरम्भ में मेरी पर्वतान्तर्गत भग्न ग्राम निवासिनी कुमारी लक्ष्मी देवी के साथ उनका विवाह संस्कार हुआ। ऋषि आज्ञा को शिरोधार्य समझते हुए पंडित लेखराम ने विवाह तो किया पर जहां तक उनसे हो सका बसु ब्रह्मचारी पद से ऊपर उठने का प्रयत्न करते रहे।

ऐसा ज्ञात होता है कि पौराणिक पूजादि तो कहां साधारण जातीय रिवाजों की जंजीरों को भी पंडित लेखराम ने इस विवाह पर तोड़ डाला था हमारे चरित्र नायक के चाचा श्री गण्डाराम जी लिखते है कि पंडित लेखराम ने अपने विवाह पर पंजाब के रिवाजानुसार तम्बोल इत्यादि नहीं लिया था।

मुझे पंडित लेखराम बतलाया करते थे कि विवाह होते ही उन्होंने अपनी धर्म पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। देवी लक्ष्मी की अपने पति में अनन्य भक्ति थी और इसलिए वह उन्हें प्रसन्न करने का सदा प्रयत्न किया करतीं।

विवाह के पश्चात् पंडित लेखराम कुछ दिनों और अपने ग्राम में रहकर अपनी धर्म पत्नी को धार्मिक-शिक्षा देना चाहते थे। परन्तु जब उस समय के धर्म-युद्ध में सहायता की आवश्यकता होने पर मैंने उन्हें बुलाया तो गृहस्थ के संबंधविचारों को शिथिल करके वह तत्काल ही मेरे पास आ पहुंचे।

# आर्यपथिक का आक्रमण

लाहौर में जो मांस - भक्षण विषयक झगड़ा चला था। उसको बहुत पुष्टि जोधपुर में मिली थी। जोधपुर राम के मुख्य प्रबंधक तीन पीढ़ियों से अब तक महाराज मेजर जनरल सर प्रतापसिंह चले आते हैं। (इस समय उनका देहान्त हो चुका है) महाराज प्रताप सिंह थे तो ऋषि दयानन्द और वैदिक धर्म के दृढ़ भक्त परन्तु मन में यह बात बैठ गई थी कि मांस भक्षण के बिना राजपूत जाति की वीरता स्थिर नहीं रह सकती। लाहौर में आर्यसमाज के दो दल हो जाने के पश्चात् स्वामी प्रकाशानन्द मांस दल की ओर से जोधपुर पहुंचे वहां उन्होंने यह लीला रची कि समाचार पत्रों के सम्पादकों तथा धर्मोपदेशों से मांस भक्षण के समर्थन में व्यवस्था दिलायी जावे। इसी लीला की पुष्टि में आर्य गजट, तथा भारत सुधार नामी मांस भक्षण का समर्थन करने वाले समाचार पत्रों के सम्पादकों को पारितोषिक मिले। एक दो प्रसिद्ध आर्य पुरुषों ने भी महाराजा प्रतापसिंह की हां में हां मिलाकर 'रूप्योऽसौ भगवान् स्वयम्' के साक्षात् दर्शन किये। कुछ आर्य समाजी पंडितों को भी भर्सी दक्षिणा बांटी गई। तब सोचा गया कि कोई बड़ी चोट लगानी चाहिए। उस समय पंडित भीमसेन ऋषि दयानन्द के निज शिष्य समझे जाते थे और मेरठ के पंडित गंगादास एम०ए० स्वर्गवासी पंडित गुरुदत्त के पीछे उनके सदृश विद्वान माने गये थे। इन दोनों महानुभावों को महाराजा साहब की ओर से निमंत्रण गया, पंडित भीमसेन फिसलने वाले प्रसिद्ध थे इसलिए उनको ठीक अवस्था में रखने के लिए धर्मवीर पथिक को भेजा गया।

पंडित भीमसेन और पंडित गंगाप्रसाद एम०ए० दोनों २ अगस्त १८९३ ई० के प्रातः जोधपुर पहुंचे। पंडित गंगाप्रसाद को बहुत लालच दिये गये परन्तु उन्होंने स्पष्ट कह दिया कि धन व प्रतिष्ठा का लालच उन्हें धर्म से च्युत नहीं कर सकता। ४ अगस्त को पंडित भीमसेन जी की पहली भेंट महाराजा प्रतापसिंह से हुई। पंडित भीमसेन ने यह तो कहा कि वेद में मांस भक्षण का प्रत्यक्ष खण्डन है परन्तु यह मानकर कि हिंसक पशुओं का वध पाप नहीं, उन्होंने दबे दांतों ऐसे पशुओं के मांस के भक्षण का विधान कर दिया।'

५ अगस्त को प्रातःकाल ही पंडित लेखराम जी जोधपुर में पहुंचे और सारा हाल सुना। वीर आर्यपथिक ने पंडित भीमसेन की खूब खबर ली, क्योंकि स्वामी प्रकाशानन्द ने झूठा समाचार फैलाया था कि पंडित भीमसेन मांस भक्षण का समर्थन कर आये हैं। बेचारा भीमसेन बहुत गिड़िगिड़ाया परन्तु धर्मवीर बिना ठीक प्रतिज्ञा कराये कब छोड़ते थे। 'ईश्वर जानता है अगर तूने महाराजा के पास स्पष्ट जाकर न कहा कि वेद में मांस भक्षण का सर्वथा निषेध है तो तुझे किसी धार्मिक संस्था में पैर रखने के काबिल नहीं छोड़ूंगा'। पंडित भीमसेन दूसरे दिन ही विदा होने गये और बिना पूछे ही महाराजा प्रतापसिंह से स्पष्ट शब्दों में कह दिया-'मांसभक्षण पाप है। और वेदों में हानिकारक पशुओं को दण्ड देने और आर्थिक हानि पहुंचायें तो मार डालने की भी आज्ञा है, परन्तु मांस उनका भी दोष ही है। और मैंने जो कहा था कि उनके मांस खाने में अधिक दोष नहीं है, (सो) उसका यह आशय नहीं लिया जा सकता कि हानिकारक पशुओं का मांस खाना चाहिए, या उससे कोई दोष नहीं है। मेरा तात्पर्य यह था कि ऐसे पशुओं के मारने में संसार की कुछ हानि नहीं है और उपकारी पशुओं का मांस खाने की अपेक्षा कम दोष हैं, परन्तु दोष अवश्य है। इसलिए हानिकारक पशुओं का मांस भी नहीं खाना चाहिए, वह भी सर्वथा अभक्ष्य है।' आर्यपथिक की धमकी ने इतना असर किया कि पंडित भीमसेन के लिए जो १०००) भेंट स्वीकार हुआ था वह आधा ही रह गया और पंडित भीमसेन की आर्यपथिक पर इतनी श्रद्धा बढ़ गई कि उन्होंने जोधपुर से लौटते ही पंडित लेखराम की 'तारीख-ए-दुनिया' का आर्य भाषा में अनुवाद करके 'ऐतिहासिक निरीक्षण' नाम से मुद्रित कर दिया और शायद इस प्रकार जोधपुर के ५००) की कमी पूरी की।

जोधपुर में मांस प्रचारकों का भण्डा फोड़कर कुछ दिनों ऋषि जीवन संबंधी मसाला वहीं एकत्र करते रहे, परन्तु विरोधी उनके आक्रमण से ऐसे तंग आ गये थे कि उन्हें अधिक दिनों तक जोधपुर ठहरने में अपनी बड़ी हानि समझते थे। जहां कहीं आर्यपथिक आन्दोलन करने जाते महाराजा प्रतापसिंह का गुप्तचर साथ जाता। पहले हल्ले में जो कुछ घटनाएं लिखी गई वह तो ठीक रहीं परन्तु उसके पश्चात् लोगों ने डर के मारे ऋषि जीवन संबंधी घटनाएं ही बतलानी बन्द कर दीं। तब पंडित लेखरामजी फिर पंजाब की ओर लौट आये।

जो पत्र जोधपुर से पंडित लेखरामजी ने लिखे थे उनसे ज्ञात होता है कि प्रकाशानन्द जी के घोर विरोध पर भी आर्यपथिक अपने काम पर डटे रहे और अन्त में सारा आन्दोलन करके ही लौटे।

इन्हीं दिनों अमेरिका के शिकागो नगर की प्रदर्शिनी की तैयारियां हो रही थीं और आर्य समाजों की ओर से कोई विशेष प्रतिनिधि भेजने का विचार छिड़

रहा था । जोधपुर में ही राव राजा तेजसिंह से आर्यपथिक को पता लगा कि भास्करानन्द (जो महाराजा प्रतापसिंह का भेजा हुआ उन दिनों अमेरिका में था।) चाहता है कि आर्य समाज उसे अपना प्रतिनिधि चुन ले । पंडित लेखराम जानते थे कि वह धूर्त्त है अतएव उन्होंने आर्य जनता को सचेत कर दिया । दूसरी ओर साधु शुगनचन्द दिखाते फिरते थे । पंडित लेखराम ने स्वयं तैयार करके एक अपील बाबू रामविलास शारदा जी को दी जो उन्होंने आर्य पब्लिक में मुद्रित कर दी । इस अपील में २०००) तो प्रचारक के मार्ग व्ययादि के लिए मांगा गया था और सुयोग्य अंग्रेजी के विद्वान की सेवा मांगी थी । यह दूसरी बात है कि कोई भी आर्य पथिक के धर्मानुराग में इससे कोई क्षति नहीं हुई । यदि स्वयं अंग्रेजी पढ़े होते तो अवश्य स्टीमर में बैठकर चिकागो चल देते ।

जोधपुर से लौटकर पंजाब में स्थान-स्थान से पंडित लेखराम की मांग आने लगी । जहां कहीं भी विरोधियों की ओर से आर्य समाज पर आक्रमण होता, रक्षा के लिए आर्य पथिक को कष्ट देना पड़ता ।

पंजाब में लौटते ही पहला धावा पंडित लेखराम का श्री गोविन्दपुर (जिला गुरुदासपुर) पर हुआ । २३, २४ सितम्बर सं० १८९३ को बराबर वार्षिकोत्सव मनाया जाता रहा जिसमें पंडित लेखराम का सर्वोत्तम व्याख्यान हुआ । परन्तु आर्यपथिक के उच्च स्वभाव का इससे पता लगता है कि उत्सव का हाल प्रचारकों में भेजते हुए जहां अन्य सब उपदेशकों के व्याख्यानों को बड़ी प्रशंसा की है वहां अपने व्याख्यान का साधारण वृत्तान्त कलम की अढ़ाई पंक्तियों में समाप्त कर दिया है । मुझे आर्यपथिक के पत्र व्यवहार से भी प्रमाण मिले हैं और मैं स्वयं भी जानता हूं कि अन्य बहुत से उपदेशकों की शैली के विरुद्ध पंडित लेखराम का सदैव यह प्रयत्न हुआ करता था कि आर्य समाज की वेदी से जो भी उपदेशक व्याख्यान देने खड़ा हो वह सर्वसाधारण में कृत-कार्य होकर ही बैठे ।

श्री गोविन्दपुर से लौटकर ऋषि जीवन का वृत्तान्त एकत्र करते हुए पंडित लेखराम मेरे पास जालन्धर पहुंचे और मुझे पेशावर आर्य समाज के उत्सव पर ले जाने के लिए आग्रह किया । मुझे इन्कार कब हो सकता था ।

पेशावर की इस बार की यात्रा मुझे केवल इसीलिए स्मरणीय नहीं है कि मैं पहले पहल अटक से पार चला था । प्रत्युत इसलिए भी कि पंडित लेखराम के कई पक्के विचार मुझे इसी यात्रा में मालूम हुए । पंडित लेखराम पलाण्डु (पियाज) के बड़े पक्षपाती थे और समझते थे कि इसके सेवन से आर्य गृहस्थी को वंचित रखना अपनी जाति की शारीरिक अवस्था के साथ शत्रुता करनी है । मुझसे पहले इस विषय पर बातचीत हुई । मेरे मनु का प्रमाण देने पर आपने कहा - 'प्रथम तो पलाण्डु के अर्थ प्याज हैं ही नहीं, और यदि मान भी लो तो यह श्लोक ही प्रक्षिप्त है ।'

इस विषय पर आर्यपथिक ने नोटबुक में 'रिसाला अंजुमन जिराअत बिजनौर' से नीचे का उदाहरण दिया है - 'पियाज की तासीर इसके खाने से मोटा होता है, रक्त में प्रवाह आता है, तरकारियां इससे मजेदार होती हैं, लहसुन के बराबर गुण है। मगर बलगम बढ़ाता है। जुकाम के लिए गुणकारी है। श्वेत प्याज घर में रखने से सांप वहां पर नहीं आता।'

फिर ब्रह्मावर्त की सीमा पर बातचीत छिड़ी। पंडित लेखराम जी ने पौराणिकों की मानी हुई सरस्वती का खण्डन करके बतलाया कि सरस्वती का तात्पर्य 'ब्रह्मपुत्रा' नदी का है जो भारत की पूर्वीय सीमा पर होती हुई समुद्र में जा मिलती है। आपने कहा सरस्वती ब्रह्मा की पुत्री कही जाती है, पुत्र का स्त्रीलिंग हुआ पुत्रा, पस 'ब्रह्मपुत्रा' और सरस्वती पर्यायवाची शब्द है। सरस्वती कोई ऐसी नदी न थी जो मध्यभारत में कहीं छिप गई हो। इसके पश्चात् आपने दृषद्वती से 'अटक' महानदी का तात्पर्य लिया। यहां पर याद रखना चाहिए कि यदि सरस्वती पौराणिक कथा के अनुसार मानी जावे और 'दृषद्वती' से ब्रह्मपुत्रा नदी समझें तो पंडित जी का निवास स्थान कहूटा ब्रह्मावर्त में सिद्ध नहीं होता। अब दूसरी प्रभात की घटना समझ में आ जायेगी।

बातचीत करते-करते हम दोनों सो गये। प्रातः उठकर मैं अपने विचार में निमग्न था कि रेल अटक के पुल के पास पहुंची और पंडित लेखराम ने मेरी बांह पकड़कर कहा - 'लालाजी ! उठिये, उठिये ! देखिए क्या इससे बढ़कर कोई पत्थर वाली नदी हो सकती है ? दृश्य बड़ा गम्भीर तथा उच्च था। मैं इस अपूर्व चित्तोत्कर्षक दृश्य की ओर टकटकी लगाये खड़ा था कि आर्यपथिक के शब्दों ने झटका देकर जगा दिया "लाला जी देखिये -यह पत्थरों वाली दृषद्वती नदी है, सरस्वती ब्रह्मपुत्रा है और इन दोनों देवनदों के मध्य का स्थान ब्रह्मावर्त है।' मैंने उत्तर में कहा 'पंडित जी मैंने आज मान लिया कि 'कहूटा' ग्राम ब्रह्मावर्त का ही एक भाग है।' पंडित जी के मुख पर विशाल मुसकराहट के चिह्न दिखाई देने लगे और हंसते हुए बोले - 'ईश्वर जानता है, आप मजाक में बात उड़ा देते हैं। मेरा मतलब तो इल्मी तहकीकात से था।'

व्याख्यानादि तो वार्षिकोत्सव में हुए ही परन्तु धर्म चर्चा के समय बड़ा आनन्द आया। यह बात प्रसिद्ध थी कि पंडित लेखराम वृक्षों में जीवात्मा को विद्यमान नहीं मानते थे। एक मांस प्रचारक व्यक्ति ने यह प्रश्न उठाकर कि वृक्षों में जीवात्मा है या नहीं उत्तर पंडित लेखराम से मांगा, तात्पर्य इस प्रश्न से यह था कि वृक्षों में जीव विषय में मतभेद रखता हुआ एक पुरुष आर्य समाजी रह सकता है तो मांस भक्षण का प्रचार करने पर किसी को क्यों आर्य समाज से अलग किया जावे मैं यह कहकर, कि प्रश्न आर्य समाज पर होना चाहिए न कि विशेष

पर, उत्तर के लिए उठा ही था कि पंडित लेखराम स्वयं उत्तम उत्तर देने के लिए खड़े हो गये और निम्नलिखित मनोरंजक प्रश्नोत्तर हुए -

प्रश्नकर्ता...क्या आप वृक्षों मे जीव मानते है ?

उत्तर - 'क्या एक जीव ? एक वृक्ष में एक क्या, अनेक जीव पाये जाते है और यही मैं मानता हूं ।'

प्रश्न -'मैंने तो सुना था कि आप वृक्षों में जीव नहीं मानते ।'

उत्तर - 'तुम अजब भोले आदमी हो । अब तो मैं तुम्हारे सामने हूं । सुनी सुनाई बात पर बुद्धिमान पुरुष विश्वास नहीं करते । कल्पना करो कि वृक्ष को जीवधारी ही मान लें तो ऐसी अवस्था में यह मानना पड़ेगा कि वृक्ष में जीव सुषुप्तावस्था में है । तब तुम्हारा बकरे आदि का मांस खाना क्या वृक्ष के फल खाने के समान होगा ? भोले भाई पशु पक्षी का मांस बिना हिंसा के उपलब्ध नहीं होता, और वृक्ष को तुम्हारे फल तोड़ लेने से कुछ कष्ट ही नहीं प्रतीत होता ।'

श्रोतागण को पता लग गया कि प्रश्न कुटिल भाव से किया गया है और प्रश्नकर्त्ता लज्जित होकर बैठ गया ।

पंडित लेखराम की हाजिर - जबाबी उन्हें बहुधा अनावश्यक वाद-विवाद से बचा दिया करती थी । एक बार रेल का यात्रा में एक उदासी साधु का साथ हुआ । बातचीत चलने पर उसने स्वामी दयानन्द को साधु-निन्दक सिद्ध करने के लिए कहा - 'दयानन्द जी ने गुरु नानक जी को दम्भी लिखा है और उनकी निन्दा की है । यह संन्यासियों का काम नहीं ।' पंडित लेखराम उदासी जी को बड़े प्रेम से समझाने लगे और कहा - 'देखो, बाबा नानक जी के आशय की तो स्वामी जी ने प्रशंसा ही की है । हां, वेदों की कहीं-कहीं निन्दा उनसे सहन न हुई और संस्कृत न जानते हुए भी उसमें पग अड़ाते देखकर यह लिखा है कि दम्भ भी किया होगा ।' पंडित लेखराम ने बहुत कुछ समझाना चाहा परन्तु उस उदासी बाबा ने शोर मचा दिया और उनकी एक न सुना । मेरे शिर में कुछ पीड़ा थी इसलिए मै स्टेशन आने पर दूसरे कमरे मे चला गया । अगले स्टेशन पर रेल धीमी हुई तो उदासीजी दबे हुए से प्रतीत हुए और पंडित लेखराम तेज सुनाई दिये । मैं भी फिर उसी कमरे में चला गया तो विचित्र दृश्य देखा । उदासी तो कुछ शांति की याचना कर रहे है और पंडित लेखराम उनको दबा रहे हैं । मालूम हुआ कि जब समझाने पर उदासी दबाये ही चला गया तो पंडित लेखराम ने कड़क कर कहा -

अच्छा अगर बाबा नानक खुद कहते हैं कि मुझमें दम्भ है तो ? उदासी कुछ आश्चर्य चकित सा होकर बोला 'यह क्या ?' पंडित लेखराम ने सिक्खों के ग्रंथ से एक वाक्य पढ़ा जिसमें दो तीन साधारण निर्बलताओं के साथ दम्भी शब्द भी था । अब तो उदासी बाबा कुछ ढीले हुए और जब मै पहुंचा तो कह रहे थे - 'यह तो कसर नफसी है । इसका यह मतलब थोड़े ही है कि श्री

महाराज दम्भी थे।' हाजिर जवाब लेखराम ने उत्तर में दस घृणित पापों के नाम ले लेकर कहा - 'यह सब पाप अपने में क्यों न बतलाये ? तुम बाबा नानक को मक्कार समझते हो, हम तो उन्हें ईश्वर के सच्चे भक्त समझते हैं। उन्होंने मेरे कहे हुए दुराचारों का नाम इसलिए नहीं लिया कि उनमें वह ऐब न थे। दो तीन कमजोरियां ही गरीब में थीं और उनसे बचने की प्रार्थना अपने मालिक से की। तुम चाहे अपने गुरु को मक्कार समझो हम तो बाबा नानक देवजी को सच्चा ईश्वर भक्त समझते हैं।

उदासी जी फिर कुछ गुन गुनाना चाहते थे परन्तु आर्यपथिक ने यह कहकर बातचीत समाप्त कर दी - 'बस साहब ! मैं तुमसे बात करना भी पाप समझता हूं। तुम गुरु निन्दक हो और उदासी जी की वाणी पर ताला लग गया।

पेशावर के जलसे पर जाने से पहले पंडित लेखराम मांस-भक्षण के विषय पर एक प्रामाणिक ग्रंथ लिखवाकर छपवा गये थे जिसकी समालोचना ६ कार्तिक संवत् १९५० के सद्धर्म प्रचारक में निकली थी। एक लघु पुस्तक का नाम था 'आर्य समाज में शान्ति फैलाने का उपाय और रामचन्द्रजी का सच्चा दर्शन।' वेद शास्त्र के प्रमाणों से मांस भक्षण का निषेध दिखलाते हुए स्वामी दयानन्द जी के मन्तव्य को उनके ग्रंथों से स्पष्टतया दिखलाया और अन्तिम भाग में 'रामचन्द्र का दर्शन' नामी काव्य के कवि की इस कल्पना का जो वह जन साधारण में मौखिक फैलाते थे कि रामचन्द्र जी ने मांस खाया, 'रामचन्द्र का सच्चा दर्शन' लिखकर प्रबल प्रमाणों तथा युक्तियों से खण्डन किया।

जिन सज्जनों को मांस का प्रचार अभीष्ट था और जो मांस भक्षण से ही राष्ट्र में जीवन फूंकना सम्भव समझते थे वे प्रायः पंडित लेखराम को 'पेशावरी गुण्डा' की उपाधि देते थे। यह इसलिए नहीं कि पंडित लेखराम कुछ अधिक कटु वचन बोलना व बहुत तीखा व्यक्ति आक्रमण करते थे, प्रत्युत इसलिए कि जहां औरों के कटाव 'व्यक्तिगत आक्रमण' कहकर टाले जा सकते थे वहां आर्य पथिक की युक्तियोड़ का युक्ति-युक्त उत्तर देना बड़ी टेढ़ी खीर थी। इसी लघु पुस्तक के प्रथम भाग में केवल प्रमाण दिये और उनका समर्थन युक्तियों से किया है। समाप्ति पर ग्रंथ कर्त्ता का केवल तीन पंक्तियों में निवेदन है - 'पस, सब वेद के मानने वालों का योग्य है कि यथार्थ सत्य-शास्त्र की रीत्यनुसार मद्य मांसादि दुष्ट वस्तुओं का त्याग करके सदा उस भोजन का भोग करें जो रक्त युक्त न हो और जिसके लिए हमें निपराधी पशुओं के गले छुरी न चलानी पड़े, यथा ईश्वर की आज्ञा है।'

इस लेख को पढ़कर सर्व पाठकों को उन लोगों की बुद्धि पर आश्चर्य होगा जिन्होंने लेखराम का 'पेशावरी गुण्डा' की उपाधि देने वालों ने लेखराम के पवित्र नाम से हिमालय की चोटियों तक गुञ्जा दिया और सच्चे ब्राह्मण

उपदेशक के चरणों में सिर नवाकर अपने किये पाप का प्रायश्चित किया।

पेशावर से लौटने के पश्चात् हम पं० लेखराम को २८-२९ अक्टूबर रावलपिण्डी में और ३१ अक्टूबर १८९३ के दिन लाहौर में, 'वर्तमान दशा और हमारे कर्त्तव्य' पर व्याख्यान देता पाते हैं। फिर नवम्बर के आरम्भ में उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य समाज में हुआ। शायद इसी सन् के सितम्बर मास में पं० लेखराम अपनी पत्नी को जालन्धर ले आये थे और इसलिए यही नगर उनका निवास स्थान बन गया था।

जालन्धर में ही बैठकर जहां एक ओर पं० लेखराम ने ऋषि जीवन की तैयारी का आरम्भ किया वहां उन्हीं दिनों अपनी सबसे बड़ी पुस्तक 'सबूत-ए-तनासुख' नामी पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए लिखकर पूर्ण कर ली और उसके छपाने का विज्ञापन भी सद्धर्म प्रचारक में दे दिया। इस पुस्तक पर जो परिश्रम करना पड़ा होगा उसका अनुमान वे सज्जन ही लगा सकते हैं जिन्होंने संसार भरके मतवादियों के आक्षेप इस सिद्धान्त पर पढ़े हैं। बाहर वालों को तो एक सदा भ्रमण करने वाले यात्री की लेखनी से ऐसा अपूर्व ग्रंथ तैयार होते देखकर विस्मय सा होता था परन्तु मुझसे व्यक्ति को जिसने आर्य पथिक को एक पल भी व्यर्थ गंवाते नहीं देखा था कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इन दिनों आर्य समाज में घरू युद्ध की ज्वाला बड़े वेग से प्रज्वलित हो रही थी। लाहौर में आर्य समाज के दो टुकड़े हो चुके थे और आर्य प्रतिनिधि सभा के वार्षिकाधिवेशन में भी शिक्षित दल का सभ्यता का चमत्कार दिखाई दे चुका था। परन्तु पंडित लेखराम उस समय भी बाह्य विरोधियों के आक्रमणों से ही आर्य समाज की रक्षा करने में लगे हुए थे। चारों ओर से महम्मदियों के आक्रमण रोकने के लिए आर्य पथिक की मांग आती थी, इसीलिए २७ कार्तिक १९५० के प्रचारक में मैंने लिखा था 'ज्ञात हुआ है कि महाराजा कृष्णप्रसादजी पेशकार मंत्री सेना विभाग (राज हैदराबाद दक्षिण) इसलाम की ओर झुके हुए हैं और आर्य पथिक की मांग हो रही है। परन्तु कुराना - चार्य्य जहां एक और महर्षि के जीवन चरित्र की तैयारी में सन्नद्ध है वहां दूसरी ओर शरीर को खेद भी है। लेकिन एक आदमी क्या-क्या कर सकता है.....।'

पंडित लेखराम को मैंने इन दिनों ऋषि जीवन वृत्तान्त की तैयारी में निरन्तर लगा दिया था; परन्तु अपना नियत काम समाप्त करने पर उन्होंने जालन्धर के बाजारों में नित्य प्रचार करना आरम्भ कर दिया। जालन्धर में भी आर्य पथिक को बैठने कौन देता था। इसी वर्ष (सन् १८९३ ई०) के दिसम्बर में लाहौर नगर इण्डियन नेशनल कांग्रेस का केन्द्र बन रहा था। राजनैतिकों के शिरोमणि दादा भाई नौरोजी प्रधान निर्वाचित हुए थे। दूर-दूर से आर्य भाई भी आये थे। इस अवसर पर पंडित लेखराम को भी व्याख्यानों के लिए लाहौर

बुलाना पड़ा । फिर लाहौर से लौटते ही समाचार आया कि शाहाबाद (जिला अम्बाला) के पास एक ग्राम में कुछ हिन्दू महम्मदी मत ग्रहण करने वाले है। पंडित लेखराम की टांग में एक फोड़ा था जिससे वह तङ्ग थे । मैंने उत्तर दिया - 'पंडित जी यह लोग बड़े निर्दय है । समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ्य एक सा नहीं रहता । आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूंगा ।'

पंडित लेखराम मेरे कार्यालय के सामने वाटिका की दूसरी सीमा वाले कमरे में काम किया करते थे, वहां चले गये । आध घंटे के पश्चात् फिर मेरे पास आकर बैठ गये - 'क्यों साहब ! किसको भेजने का ख्याल है' मैंने उत्तर दिया - 'पंडित जी ! यह लोग बड़े बेपरवा हैं । इनको स्वयं भुगताना चाहिए, और क्या हो सकता है ।' आर्यपथिक कुछ रुक-रुककर बोले-वे गरीब क्या करेंगे कुछ तो इन्तजाम होना चाहिए, मैंने उत्तर में कहा - 'कहिये तो पंडित लालमणि को भेज दूं ।' पंडित लेखराम मुस्करा कर बोले - 'ईश्वर जानता है आपने मुझे कायल कर दिया, रात को रेल में ही चला जाऊंगा ।'

पंडित लेखरामजी के धर्मसेवा के भाव का यह एक ही दृष्टान्त नहीं है । मैंने यह एक नमूना पेश किया है ।

शाहाबाद के पास वाले ग्राम में एक मुसलमान होने वालों को बचाकर इस्माईलाबाद में तीन व्याख्यान दिये जिनके प्रभाव से पीछे वहां आर्य समाज स्थापित हो गया । फिर शाहाबाद, थानेश्वर और करनाल में व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आये । शाहाबाद में आर्य समाज का स्थापित होना भी इसी बार के प्रचार का फल था । इस धावे पर जाते हुए मैंने आर्यपथिक से प्रतिज्ञा की थी कि छुट्टी के दिनों में मैं भी उनकी सहायता के लिए पहुंचूंगा, परन्तु उन्होंने शाहाबाद पहुंचते ही मुझे लिख दिया कि मेरी कुछ आवश्यकता नहीं । पंडित लेखराम किसी को भी अनावश्यक कष्ट नहीं देते थे और यह देखकर कि मेरी अनुपस्थिति में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का काम बिगड़ेगा उन्होंने अकेले ही सब काम कर लिया ।

ऊपर लिखित सब काम करते हुए भी पंडित लेखराम को अन्धविश्वासों की पोल खोलने के लिए समय मिल जाता था । २० जनवरी सन् १८९४ ई० के ताजुल अखबार में एक समाचार निकला कि एक सैय्यद जलाली की कब्र खुदवाकर टाउनहाल में मिलाने के कारण मुजफ्फरनगर का एक तहसीलदार अन्धा हो गया और जाइण्ट मजिस्ट्रेन पागल हो गये । पंडित लेखराम ने समाचार पढ़ते ही अपने मित्र, जफ्फर नगर के रईस से असल हाल पूछा जिनके पत्र से यह समाचार सर्वथा झूठा सिद्ध हुआ, उस पत्र व्यवहार को पंडित लेखराम ने २२ माघ १९५० के सद्धर्म प्रचारक में छपवा दिया ।

फरवरी १८९४ में मान्ट-गुमरी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर क्या व्याख्यान देने के अतिरिक्त झंग और कमालिया आदि स्थानों में प्रचार करते हुए लाहौर पहुंचे। इसी मांस के प्रचारक में एक लेख माला आरम्भ हुई जिसे पंडित लेखराम के धर्म पर बलिदान होने के पश्चात् 'तकजीब बुराहान आहमदिया' के दूसरे भाग में सम्मिलित किया गया था। इस लेखमाला में अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध किया गया है कि 'असकन्दरिया' (मिश्र प्रान्त) का प्रसिद्ध पुस्तकालय महम्मदी पक्षपात की ही भेंट चढ़ा था।

ऋषि जीवनी की तैयारी के साथ-साथ मौखिक धर्म प्रचार का कार्य भी बराबर जारी रहने का प्रमाण समाचार पत्रों के अवलोकन से मिलता है। १४ मार्च तक श्री गोविन्दपुर तथा आस-पास के ग्रामों में धर्म प्रचार की धूम रही, शङ्का समाधान खूब होता रहा। वहां से लौटकर कुरुक्षेत्र की भूमि में प्रचार के लिए पंडित लेखरामन मेरे साथ चल दिये।

जिस प्रकार चन्द्र-ग्रहण पर काशी में गङ्गा स्नान का महात्म्य है उसी प्रकार सूर्य ग्रहण को कुरुक्षेत्र के तालाब में डुबकी लगाने से, पौराणिक, मतावलम्बी, स्वर्ग प्राप्ति की कल्पना करते है। ६ अप्रैल १८९४ को सूर्य ग्रहण होने वाला था इसीलिए २९ मार्च को ही, सरकारी हस्पताल के पास सड़क के किनारे पर साफ करके आर्य समाज का प्रचार मण्डप खड़ाकर दिया गया और अप्रैल के आरम्भ से ही वैदिक धर्म के प्रचार का काम शुरू हो गया। इस प्रचार में शङ्का समाधान का काम प्रायः पंडित लेखराम जी ही करते रहे। 'धर्म का असलियत और उसका आन्दोलन' विषय पर जो व्याख्यान इस स्थान पर पंडित लेखराम ने दिया वह बड़ा ही चित्ताकर्षक था। दूसरे व्याख्यान में आपने यह बतलाया कि आर्य समाज ऋषियों की निन्दा नहीं करता बल्कि उनके सिद्धान्तों को फैलाता है ६ अप्रैल को मेरे साथ पंडित लेखराम करनाल चले आये जहां ७, ८, और ९ अप्रैल को आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देने के अतिरिक्त शङ्का समाधान भी खूब किया। वार्षिकोत्सव के पश्चात् मैं तो चला आया परन्तु आर्य मुसाफिर एक मास तक करनाल में ही रहे क्योंकि जिस टांग के फोड़े के कारण मैं उन्हें शाहाबाद नहीं भेजना चाहता था। वह फोड़ा इतस्ततः भ्रमण करने फिरने के कारण बहुत खराब हो गया था। इसी फोड़े के संबंध में एक मनोरंजक बात मुझे याद आई है। पंडित जी ने कुछ सभासदों से पूछा-'किसी आर्य डाक्टर के पास मुझे ले चलो तो फोड़ा दिखलाऊंगा।' एक अधिकारी ने किसी मुसलमान डाक्टर का नाम लेकर कहा कि उसे बुलाकर दिखायेंगे। पंडित जी ने फिर पूछा कि क्या कोई आर्य डाक्टर नहीं है। लाला कर्त्तारांम ने कहा - 'डाक्टर तो कोई आर्य समाज का सभासद नहीं। इलाज में आर्य अनार्यपना क्या घुसा है ?' आर्य पथिक की आंखें लाल

हो गई और बोले 'खाक आर्य समाज है। एक डाक्टर को भी आर्य नहीं बना सकते।' मैंने हंसकर कहा कि जिस समाज का कोई डाक्टर सभासद न हो तो क्या उसे आर्य समाज ही न कहा जाय। आर्य पथिक ने कुछ गम्भीर होकर उत्तर दिया- जिस आर्य समाज ने डाक्टरों, स्कूलों के अध्यापकों और विद्यार्थियों को आर्य नहीं बनाया उसने क्या खाक काम किया। जड़ को सींचने से ही वृक्ष हरा होता है।' इस उत्तर ने मेरा अन्तःकरण तक लेखराम के पैरों में झुका दिया था।

इस एक मास के करनाल निवास के समय की कुछ घटनाएं लाला कर्त्तारिम जी ने लिखी है जिनका संक्षिप्त वृत्तान्त यहां देना शिक्षाप्रद होगा-'एक दिन पादरी साहब पंडित जी से मिलने के लिए आर्य मन्दिर में आये। मेरे सामने वैदिक धर्म के विषय में कुछ प्रश्न किये जिनका उत्तर पंडित लेखराम जी ने बड़े नम्र, मधुर शब्दों में दिया। इसके पश्चात् पं० जी ने क्रिश्चियन मत के विषय में कुछ बातें पूछीं जो पादरी साहब के बतलाने पर नोट कर लीं। पादरी साहब ने विदा होते समय पं० जी की योग्यता और शिष्टाचार की बहुत प्रशंसा की।

'इन्हीं दिनों करनाल पोस्ट आफिस के महाशय गोपाल जी सहाय के पुत्र उत्पन्न हुआ। ज्योतिषी ने व्यवस्था दी कि लड़का माता, पिता, भाइयों को मार कर रहेगा। माता,पिता ने उनके लिए दूसरे माता-पिता ढूंढ़ने चाहे परन्तु ऐसी उत्तम ख्याति वाले बालक को अंगीकार कौन करता। पंडित लेखराम को जब पता लगा तो उन्होंने समझाकर महाशय गोपाल सहाय को ऐसी अनुचित कार्यवाही से रोका। परिणाम यह हुआ कि न केवल सारा परिवार ही जीवित है प्रत्युत उस बालक के दो भाई और हो चुके हैं और पिता की वेतन वृद्धि होती रही।

'पंडित जी सन्ध्या वन्दन में बड़े पक्के थे। नित्य शारीरिक व्यायाम भी करते थे। निकम्मे, खराब पके हुए भोजन से उन्हें घृणा थी। भोजन छादन में सावधान रहते। एक बार मैंने कहा -'महाराज ! आपको भोजन विषय में कुछ नहीं कहना चाहिए। यह आपकी शान के बरखिलाफ है।' बड़ी सख्ती से जवाब दिया -'हमलोग जो दिन रात बाहर घूमने और दिमागी काम करते हैं अगर भोजन छादन में बेपरवाई करें तो काम कैसे होगा। जो उपदेशक इस विषय में सचेत न रहेंगे वे या तो शीघ्र मर जायेंगे या काम से थक कर बैठ जायेंगे।

'प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में उठते थे। शौच के लिए बाहर जंगल में जाते थे। समय व्यर्थ नहीं खोते थे। कभी खाली बैठे नहीं देखे गये। रात के ठीक दस बजे सो जाते थे। चार-पांच घन्टे बराबर उपदेश देना उनके लिए साधारण

बात थी । ऐसा निडर, धर्मात्मा, सदाचारी उपदेशक मैंने और नहीं देखा । करनाल से शायद मई १८९४ के मध्य भाग में आर्य पथिक लौट आये और फिर जालन्धर में बैठकर ऋषि जीवन संबंधी काम करते रहे । इस अन्तर में उन्होंने स्थानीय प्रचार बन्द नहीं किया और आस-पास भी धर्म प्रचार के लिए जाते रहे । ५ जुलाई को उनका व्याख्यान जालन्धर आर्य मन्दिर में होना छपा हुआ है ।

६ जुलाई १८३४ को पंडित लेखराम जी मेरे साथ क्वेटा आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले । रास्ते में मुलतान में एक व्याख्यान देकर क्वेटा पहुंचे । वार्षिकोत्सव से पहले 'पुनर्जन्म' विषय पर उनका बड़ा सारगर्भित और आन्दोलन पूर्ण व्याख्यान हुआ था । मैं तो वार्षिकोत्सव के पश्चात् १०००) से अधिक धन वेद प्रचार के निधि के लिए लेकर लौट आया परन्तु पंडित लेखराम जी क्वेटे में ही रह गये । वहां उनके १३ व्याख्यान हुए । वहां से हिरक, दोजन, मच्छ, बोस्तान, खोस्ट, शाहरिग में, कहीं दो कहीं तीन, व्याख्यान देते हुए सीबी में पहुंचे । १ अगस्त को यहां बड़ा प्रबल व्याख्यान हुआ । और २ अगस्त को फिर सीबी निवासियों को सच्चे धर्म का सन्देश सुनाया गया । ५ अगस्त को पांच-छः सौ की जन-उपस्थिति में 'दीन महम्मद' और 'महम्मद मुस्तफा' को शुद्ध करके फिर से वैदिक धर्म में प्रविष्ट कराया गया । ८ अगस्त को सक्खर में पहला व्याख्यान हुआ, और फिर तीन और व्याख्यान देकर आर्यपथिक ने सं० १८९४ ई० के आरम्भ में ही, जब कि उनको ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र को शीघ्र छपवा डालने की आशा बन्ध गई थी, भारतवर्ष का सविस्तार इतिहास निकालने से पहले एक मासिक पत्र निकालने का विचार किया था । उसका नामकरण संस्कार 'विद्यावर्तक' किया था और उद्देश्य यह था कि उसके द्वारा वैदिक धर्म के प्रचार तथा आर्य जाति की सेवा के सब काम किये जावें । अगस्त १८९४ में पहले अंक की विषय सूची इस प्रकार तैयार की थी -

(१) कितने आर्य समाज स्थापित हुए, (२) कितने मुसलमान या ईसाई या मुसलमान शुद्ध हुए, (३) कितनी विधवाओं के विवाह हुए, (४) विद्या संबंधी लेख (५) नये विद्या संबंधी निरूपण (६) वेद संबंधी शंकाओं का समाधान (७) ऋषियों के जीवन चरित्र ।

पंडित लेखराम की इस शुभ इच्छा की पूर्ति के लिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने उनकी मृत्यु के डेढ़ वर्ष पश्चात् 'आर्य मुसाफिर' नामक मासिक पत्र प्रकाशित करना आरम्भ किया था जो अब तक गिरता पड़ता चल रहा है । यदि इस पत्र को समयानुसार उर्दू भाषा में तत्त्वान्वेषण का साधन बनाया जावे तभी आर्य समाज को एक जागृत शक्ति कहा जा सकेगा ।

सितम्बर, १८९४ का एक और नोट मुझे मिला है जिससे पंडित लेखराम के हृदय के भाव निस्संकोचता से प्रतीत होते है -

समग्र भारतवर्ष को आर्य धर्म में लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमें हम, ईश्वर की कृपा से, कृत कार्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आ जावें :-

प्रथम - विधवा विवाह या और कोई साधन जिससे भविष्य में स्त्रियां मुसलमानी या ईसाई न हों।

द्वितीय - शुद्धि फण्ड जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म में आ सकें।

तृतीय - वेद प्रचार निधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तैयार करना।

चतुर्थ - बचपन का विवाह रोकना।

पंचम - पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा में और साइन्स वह बातें जो वेद धर्म के विरुद्ध हों, उन पर विचार करना।

षष्ट - साधु कम हों और उपदेशक बनकर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें।

सप्तम - दान की व्यवस्था ठीक करना।

सितम्बर १७९४ के मध्य में हम पंडित लेखराम को श्री गोविन्दपुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते है, और इन्हीं दिनों प्रचारक में 'दरियाई मजहब' पर आर्यपथिक का एक विस्तृत नोट देखते हैं।

ऐसा मालूम होता है कि श्री गोविन्दपुर से निवृत्त होकर पंडित लेखराम कुछ दिनों जालन्धर में जीवन चरित्र का काम करते रहे और फिर २९ और ३० अक्टूबर को गुरुदासपुर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। दोनों दिन 'पुनर्जन्म' और 'सच्चाई का मजबूत चट्टान' विषय पर ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े गम्भीर और जन-प्रिय व्याख्यान देकर महम्मदी प्रश्न कर्त्ताओं की शंकाओं का भी समाधान किया। गुरुदासपुर से लौटकर ही, अपनी धर्मपत्नी को घर पहुंचा, पंडित लेखराम कोहाट पहुंचे जहां उन्होंने ५ नवम्बर से ११ नवम्बर, सं० १८९४ तक बराबर ६ व्याख्यान दिये। इन्हीं दिनों एक आर्य भाई के यहां मौत हो जाने पर आर्य पथिक ने मृतक संस्कार वैदिक रीत्यनुसार कराया।

कोहाटा में पंडित लेखराम के व्याख्यानों की वैसी ही धूम मच गई जैसी अन्य स्थानें में सुनने में आती थी। यहां बन्नू आर्य समाज की ओर से तारों पर तारें आती रहीं क्योंकि एक मास से बन्नू निवासी आर्य पथिक के व्याख्यानों के प्यासे बैठे थे। अन्त को १२ नवम्बर के दिन कोहाटा से तार-समाचार पहुंचा कि पंडित लेखराम जी टांगा में बन्नू को चल दिये हैं। आर्य भाई नगर निवासियों समेत टांगा के स्थान में पहुंच गये और हमारे चरित्रनायक का स्वागत कर भजन कीर्तन करते हुए उन्हें नौ बजे रात के आर्य मन्दिर में पहुंचाया।

दूसरे दिन से ही व्याख्यानों का सिलसिला शुरू हो गया । ईश्व की हस्ती, मुक्तिपथ, धर्म, सचाई का चट्टान और आर्य जीवन (विषयों) पर बड़े सारगर्भित तथा दिलों को हिलाने वाले व्याख्यान हुए । एक दिन प्रश्नोत्तर के लिए रक्खा गया जिसमें किसी अन्य मतावलम्बी ने तो कोई प्रश्न न किया, किन्तु सनातन धर्म सभा के मंत्री का पत्र आदित्यवार को शास्त्रार्थ के लिए नियत करने के निमित्त आया । तदनुसार आदित्यवार को बड़ी जन उपस्थिति में सनातन सभा के मंत्री तथा एक अन्य पंडित का 'काफियातंग' कर दिया । इन्हीं दिनों में से १९ जनवरी का दिन अपने अन्वेषण के अनुराग की तृप्ति के लिए नियत किया और ग्राम कविकभरत् के खण्डरात को जाकर देखा । लोगों में प्रसिद्ध है कि भरत की ननहसाल अर्थात् महाराजा कैकय की राजधानी इसी स्थान में थी । एक पुराना सिक्का देखकर पीछे से उनकी २२) रुपयों तक खरादने की भी आज्ञा मंत्री आर्य समाज को भेजी, किन्तु जिस मनुष्य के पास वह सिक्का था, वह उस समय मर चुका था ।

२० नवम्बर को पंडित लेखराम का अन्तिम व्याख्यान था । विषय 'आर्य जीवन' था । इस व्याख्यान में आर्य जीवन का चरित्र खींचते हुए मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र, हकीकतराय, पूर्ण भक्तादि के दृष्टान्तों को श्रोतागण के आगे ऐसी योग्यता से रक्खा कि मृत प्राणियों में भी जीवन पड़ गया और पत्थर दिलों को भी मोम बना आठ-आठ आंसू रुलाया ।

२१ नवम्बर को बन्नू से चलकर डेराइस्माइलखां के रास्ते लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए प्रस्थान किया । मालूम होता है कि २२ नवम्बर की रात को दरियाखां रेलवे स्टेशन से लाला मूसा के लिए चल दिये जहां २३ नवम्बर के प्रातःकाल पहुंच गये । लाला मूसा में कुछ देर तक ठहरना पड़ता है क्योंकि रावलपिंडी से डाक यहां १२ बजे के पश्चात् पहुंचती है ।

पंडित लेखराम समय व्यर्थ गंवाने वाले न थे । इसलिए स्टेशन के किसी बाबू से समाचार पत्र मांगे । जो पत्र बाबू ने दिये उन्हीं में ७ नवम्बर का 'मित्र विलास' मिल गया । उसी समय डायरी में नोट कर लिया -'१० अक्टूबर के मेसेन्जर में लिखा है कि परोपकारिणी सभा सत्यार्थ प्रकाश में से वह लेख जो बाबा नानक की बाबत है निकाल देवें । देखना है कि समाज इसको क्या समझती है' (मित्रविलास) -

उत्तर - परोपकारिणी सभी इसको नहीं निकाल सकती । समाज इसको स्वामीजी की तहरीर (लेख) समझता है और जब तक उसकी गलती मालूम न हो बिल्कुल सही समझता है और गलती मालूम हो जाने पर आर्य समाज नियम ४ के अनुसार गलती कबूल (भूल स्वीकार) करने को तैयार है । लेखराम आर्य

मुसाफिर बकलमखुद् - मुफस्सिल जवाब दिया जायेगा। २३ नवम्बर, १८९४ रेलवे स्टेशन लालमूसा।

धुन यह लगी रहती थी कि आर्य समाज पर कोई आक्षेप ऐसा न रहे जिसका उचित उत्तर न दिया जाये। इन्हीं दिनों दक्षिण हैदराबाद में निजाम की पुलिस ने पंडित गोकुलप्रसाद पौराणिक के मुकाबिले में व्याख्यान देने वाले पंडित बालकृष्ण शास्त्री आर्योपदेशक तथा ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी को राज से बाहर कर दिया था। उसका हाल मित्रविलास में पढ़कर नोट कर लिया कि उसके विषय में आन्दोलन करके आर्य समाज की रक्षा के लिए लेख लिखेंगे।

२३ नवम्बर की डाक में लाहौर पहुंचकर पंडित लेखराम जी ने नगर कीर्तन की शोभा अवलोकन की और २४ नवम्बर को आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में मध्याह्नोत्तर के समय, पौराणिक सभा की ओर से पंडित गोपीनाथ, गोपाल शास्त्री और एक साधु को लेकर आये थे। पौराणिकों की वक्तृताओं का जिक्र करके सद्धर्म प्रचारक में लिखा है - 'किन्तु जब आर्य मुनि जी ने दोनों (सनातनी) बोलने वालों का परस्पर विरोध, अपनी प्रबल युक्तियों से, दिखलाया और आर्यपथिक ने वेद प्रमाणों से सनातनियों के प्रमाणों और युक्तियों को खण्ड-खण्ड कर दिया तो फिर जो प्रभाव श्रोतागण पर पड़ा उसका अनुमान वही लोग कर सकते हैं जिन्होंने इन दोनों उपदेशकों के प्रसिद्ध शास्त्रार्थ देखे हैं।'

२५ नवम्बर को अन्तिम व्याख्यान पंडित लेखराम का था। समय केवल एक घण्टा दिया गया था परन्तु जब आर्य पथिक आर्य समाज के नियमों की व्याख्या करने लगे तो फिर श्रोतागण भला कब हिलने का नाम लेते। अढ़ाई घण्टे तक बराबर श्रोतागण लिखित चित्तवत् बैठे रहे। यदि वक्ता एक घण्टा और बोलते तब भी श्रोतागण बैठे रहने को तैयार थे।

लाहौर से आर्यपथिक अपने जन्मदाता आर्य समाज पेशावर में गये और ३ से ५ दिसम्बर, १८९४ तक बराबर व्याख्यान दिये। ६ दिसम्बर को रावलपिंडी उतरे, परन्तु व्याख्यान का प्रबंध न होने के कारण अपने निवास स्थान कहूटा को चले गये। इस बार अपने ग्राम में लाभचन्द्र भजनीक को भी साथ ले गये और दो दिनों तक वैदिक धर्म का खूब प्रचार हुआ। वहां से रास्ते में गुजर खां, चकवालादि स्थानों में वैदिक धर्म का डंका बजाते हुए २५ दिसम्बर, सन् १८९४ को जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में आकर सम्मिलित हुए।

पंडित लेखराम चकवाल में थे ईसाई अखबार 'नूरअफशां' में किसी का छपवाया हुआ लेख देखा जिसमें लिखा था कि पंडित लेखराम ने एक बार गुजरात में ईसा के विचित्र जन्म का पता वेदों से दिया था। आर्यपथिक ने वहीं

# लाहौर की स्थिति

स्वामी दयानन्द के जीवन चरित्र की पूर्ति के लिए आवश्यक यह था कि पंडित लेखराम बाहर के आन्दोलन के पश्चात् किसी विशेष स्थान में बैठकर काम करें, परन्तु एक ओर पंडित लेखराम का अपना धार्मिक उत्साह और दूसरा ओर आर्य जनता की आवश्यकताएं, उनको एक स्थान में बैठने न देती थीं। आर्य प्रतिनिधि सभा ने कई बार विशेष नियम बना बनाकर पंडित लेखराम को दिये। परन्तु आर्य पथिक के धार्मिक जोश को ठण्डा करने के लिए कोई भी नियम पर्याप्त न थे। जीवन चरित्र का काम करते हुए उनको बुलाने के लिए यह लिख देना काफी था कि एक आर्य जातिस्थ पुरुष मुसलमान होने वाला है या किसी महम्मदी प्रचारक के साथ शास्त्रार्थ की सम्भावना है, और फिर यदि सभा की ओर से आक्षेप होता तो पंडित लेखराम का यह उत्तर, कि शास्त्रार्थ के दिनों का वेतन काट लो, सभा के अधिकारियों को चुप कराने का अपूर्व साधन था। मेरे पास पंडित लेखराम को इसीलिए रक्खा गया था कि जमा किये वृत्तान्त को कैसे क्रम से ठीक करके छपवाने का प्रबंध करूं। परन्तु यह इकट्ठा किया हुआ मसाला समझ में नहीं आ सकता था जब तक पंडित लेखराम ही उसे नोटों से साहित्य का रूप न देते, और मैं आर्यपथिक को प्रचार के लिए भेजने पर मजबूर था। जब मैंने सभा में रिपोर्ट कर दी कि पड़ताल का कार्य किसी अन्य सज्जन के सुपुर्द हो, तो सर्व पत्रादि राय ठाकुरदत्त जी के पास भेजे गये। परन्तु जब राय साहेब ने भी इन पत्रों को अभी अपूर्ण बतलाया तो फिर यह निश्चय हुआ कि लाहौर में स्थित होकर पंडित लेखराम ही ऋषि का जीवन वृत्तान्त ठीक करके छपवाना आरम्भ कर दे।

उपरोक्त निश्चय के अनुसार पं० लेखराम जी ने लाला जीवनदास पेन्शनर के मकान में रहने का प्रबंध किया। और अपनी धर्म पत्नी को लाहौर लाने के लिए जनवरी १८९५ के मध्य भाग में घर की ओर चल दिये। मार्ग में गुजरात के आर्यों के निवेदन पर ठहर कर एक भूले भाई को वैदिक धर्म की सच्चाईयों का उपदेश करके मुसलमान होने से बचाया १८ जनवरी को

लालामूसा में व्याख्यान देकर १९ जनवरी को गुजरात में 'सद्धर्म की प्राप्ति' विषय पर एक व्याख्यान दिया और फिर जाकर अपनी धर्म पत्नी जी को साथ ले सीधे लाहौर में उपस्थित हुए।

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम जी की प्रेरणा पर जो मैंने वेद भाष्य की रक्षा विषयक लेख थे, उनका परिणा निकल आया। यह पंडित लेखराम ने ही पता लगाया था कि ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य का आर्य भाषा में अनुवाद करते हुए ब्राह्मण कुलोत्पन्न पंडित अपने सिद्धान्त बीच में घुसेड़ कर भाष्य को संदिग्ध बना रहे हैं। परोपकारिणी सभी ने यह निश्चय मुद्रित कराया कि 'महर्षि दयानन्द कृत पुस्तकों के शोधने के लिए पंडित लेखराम जी को लिखा जावे कि यह अशुद्धियां छांटकर वैदिक यंत्रालय के अधिष्ठाता के पास लिख भेजें।

लाहौर में स्थित होकर पंडित लेखराम ने जीवन चरित्र का लेख कातिब (लेखक) के हाथ में देना शुरू तो कर दिया परन्तु फिर भी एक ओर लगकर काम करना उन्हें वहां भी न मिला। ९ फरवरी १८९५ के दिन हम उन्हें अपने देश की आवश्यकता पर मान्टगुमरी में व्याख्यान देते पाते है और फिर १० फरवरी को गुजरांवाला में 'हमारी मौजूदा तहकीकात' पर प्रकाश डालते देखते हैं। कारण वही मांस-भक्षण का झगड़ा था। जहां कहीं कालिज दल के आदमी समाज को अपनी ओर खींचने जाते वहीं पंडित लेखराम को भेजना पड़ता।

परन्तु केवल सभा के अधिकारी ही ऋषि जीवन की तैयारी में बाधा डालने वाले नहीं समझे जा सकते, स्वयं पंडित लेखराम का भी इसमें बड़ा भारी हाथ होता। मान्टगुमरी और गुजरावांला जाने का हाल मुझे भेजते हुए आर्यपथिक अपने १४ फरवरी १८९५ के पत्र में लिखते हैं - 'अब भिवानी, स्यालकोट, करांची, होशियारपुर के जलसे समीप आ गये। आपने क्या सलाह की है। आप समेत ८ महाशय जाने वाले हैं। उनमें से ४ स्यालकोट और ४ भिवानी चले जावें। मै और पंडित कृपाराम जी दोनों लाभचन्द्र (भजनीक) समेत, होशियारपुर को भुगत लेंगे। बतलाइये अब क्या आज्ञा है ? जिन जिनको जिस स्थान में भेजना है, आप भली प्रकार सोच विचार कर, शीघ्र सबको सूचित कर दीजिए जिससे ठीक समय पर काम हो।'

ऊपर उद्धृत लेख स्पष्ट सिद्ध करता है कि जिस प्रकार पंडित लेखराम पेशावर आर्य समाज के प्रबंधकर्त्ता बने हुए थे उससे भी बढ़कर उन्हें दिन-रात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की चिन्ता रहती थी, परन्तु यश और कीर्ति का लेशमात्र भी लालच उन्हें न था। होशियारपुर न जाकर २३, २४ फरवरी को भिवानी आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए जहां व्याख्यानों के अतिरिक्त धर्म चर्चा में भी विशेष भाग लिया।

भिवानी से पंडित लेखराम सीधे करनाल आर्य समाज के जलसे पर पहुंचे

और उसी स्थान में उनके साथ मै भी शामिल होकर २७ से २९ मार्च तक काम करता रहा। करनाल के इस वार्षिकोत्सव पर जो दो व्याख्यान उन्होंने दिये उन्होंने हिन्दुओं के मुर्दा तनों में भी जीवन फूंक दिया। पतितों के उद्धार और आर्य जाति के भविष्य पर ऐसे बल-वर्धक व्याख्यान मैंने पहले नहीं सुने थे।

इसी वर्ष चिरकाल से सोया हुआ दिल्ली आर्य समाज जाग उठा था और ३० मार्च १८९५ से उनके वार्षिकोत्सव का आरम्भ था। इस वार्षिकोत्सव में भी पंडित लेखराम मेरे साथ ही करनाल से चलकर सम्मिलित हुए थे। दिल्ली नगर में हमारा पहला नगरकीर्तन था इसलिए दिल्ली वाले हमारी भजन-मण्डलियों को भी तमाशे वाले विज्ञापन समझे। तब हमारे उपदेशकों ने भजनों के पश्चात् ऊंचे मूढ़ों पर खड़े होकर व्याख्यान आरम्भ कर दिये। इस नगर प्रचार में पंडित लेखराम ने बड़ा काम किया। जब चांदनी चौक में छुन्नामल वालों के मकान के नीचे पंडित लेखराम ने अपनी वक्तृता आरम्भ की तो दो हजार से कम की भीड़ भाड़ न थी।

पंडित लेखराम के व्याख्यानों में महम्मदी लोग बहुत आते थे। बाहर से चाहे कुछ भाव लेकर आते परन्तु आर्यपथिक की आस्तिकता पूर्ण युक्तियां सुनकर 'सुभान अल्ला' और 'बारकअल्ला' के ही 'नारे बुलन्द' होते और दाढ़ी वाले सिर और गर्दन चारों ओर हिलती दिखाई देतीं।

अभी लाहौर पहुंचकर जीवन चरित्र का कार्य फिर से आरम्भ किया ही था कि सियालकोट से एक सिक्ख रिसाले के सवारों के डांवाडोल होने के समाचार पहुंचे। पंडित लेखराम उसी समय सियालकोट पहुंचे और बड़े प्रेम से अपने सिक्ख भाइयों को धर्म का महत्व समझाया। तीन दिन तक महम्मदी मत खण्डन में आर्य पथिक के प्रबल व्याख्यान होते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि सैकड़ों खालसे मुसलमान होने से बचे गये।

१३ अप्रैल १८९५ के प्रातःकाल मेरे साथ पंडित लेखराम जी मालेरकोटला आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। यहां की कुछ मनोरंजक घटनाएं वर्णन करने के योग्य हैं। (१) मुसलमानी रियासत होने के कारण पंडित लेखराम के पहुंचने की धूम मच गई। मध्याह्नोत्तर का समय धर्म चर्चा के लिए निश्चित था। एक सभ्य मुसलमान सज्जन मुन्शी अब्दुल्लतीफ नामी ने पुनर्जन्म पर कुछ प्रश्न किये, जिनका उत्तर यह कह देते कि उनकी तसल्ली नहीं हुई। जब तीन चार बार ऐसा ही हुआ तो मैंने पंडित कृपाराम जी का आशय उनको समझाना चाहा। इस पर वह बहुत बिगड़े। फिर भी जब दो तीन बार मै प्रबंध के लिए उठा तो मुन्शी साहब ने रोक कर कहा - 'आप कौन है जो बार-बार प्रबंध के लिए उठते हैं।' मैंने उत्तर दिया कि मैं स्थानिक प्रधान की आज्ञा से प्रबंध कर रहा हूं। जब इस पर मुन्शी साहब को विश्वास न आया

तो प्रधान स्थानीय आर्य समाज ने मेरे कथन का समर्थन किया और मैंने कहा कि मैं पंजाब आर्य प्रतिनिधि सभा का भी प्रधान हूं इसलिए प्रबंध में हाथ दे सकता हूं। मुन्शी साहब इस पर बोले - 'आपका नाम किसी प्रतिनिधि के ताल्लुक (सम्बन्ध)) में किसी अखबार में, खसूसियत से (विशेषतः) सद्धर्म-प्रचारक में भी, कभी नहीं पढ़ा। आप प्रतिनिधि के हरगिज प्रधान नहीं है' तब तो मुझे कुछ असलियत खटकी और मैंने पूछा - 'क्या आप मेरा नाम भी जानते है ?' मुन्शी अबदुल्लतीफ साहब ने फरमाया-'खूब जानता हूं। आप पण्डत (पंडित) लेखराम साहेब हैं।' इस पर श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मुझे पता लगा कि पंजाबी कोलोक्ति ठीक है -

'नाना शाह खट्ट खाय, बदनाम चोर मारा जाय।'

पंडित लेखराम के व्याख्यान तो मुन्शी साहब ने सुने ही परन्तु मेरे व्याख्यान के पश्चात् मेरे हाथ में ५) इसलिए दिये कि मैं जिस शुभ कार्य में उसें व्यय करना चाहूं कर दूं। (२) दूसरी मनोरंजक घटना रात को हुई। मैं दस बारह दिनों से दिन-रात काम करता आया था, इसलिए एकान्त में जाकर सो गया। एक घण्टे के पश्चात् ही दो भाई मेरे पैर दबाने लगे। मैं उठ खड़ा हुआ। क्षमा मांगकर उन भाइयों ने कहा कि अनर्थ होने लगा है, शीघ्र चलिए। मुसलमानी रियासत और हमारे मना करते करते पंडित लेखराम ने मुसलमानों से मुबाहसा शुरू कर दिया है ! मैं भागा हुआ पंडित लेखराम की ओर चल दिया। वहां क्या देखता हूं कि चार पांच मुसलमानों के बीच बैठे पंडित लेखराम ने एक मुसलमान युवक का हाथ अपने हाथ में लिया हुआ है और दूसरा हाथ उसकी जांघ पर रखकर उसे प्रेम से कुछ समझा रहे हैं, और युवक कह रहा है - 'यह हवाला तो, पंडित जी, आपने कुरान शरीफ में से निकाल ही दिया। अब तो अपने मौलवी साहब से फिर पूछकर आऊंगा।' परन्तु पंडित लेखराम ऐसी जल्दी कब जाने देते थे। बोले - 'मैं तो मुसाफिर हूं, न जाने फिर मिलना हो या नहीं। मेरा आशय तो सुन लो।' फिर आध घण्टे तक वैदिक धर्म की श्रेष्ठता जतलाकर उस सब मुसलमान भाइयों को बड़े प्रेम से विदा किया। जब मुसलमान विदा हो चुके, और पंडित लेखराम को मेरे आने का कारण ज्ञान हुआ, तो स्थानीय आर्य समाजियों से कहने लगे - 'तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुमसों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूं ? ईश्वर जानता है, तुमसे अविश्वासी नास्तिकों से तो निमाजी मुसलमान हजार दर्जे बेहत्तर है।

(२) फिर जब मै १४ अप्रैल की रात को शिक्रम में बैठने लगा तो तीसरी मनोरंजक घटना हुई। आर्य पुरुष चाहते थे कि पंडित लेखराम मेरे साथ ही विदा हो जायें, इसलिए मेरी शिक्रम को ठहरा लिया (क्योंकि उन दिनों

मालेरकोटले को रेल नहीं जाती थी) और पंडित लेखराम को कहा कि मैं उनके लिए ठहरा हुआ हूं। आर्यपथिक बिना बिस्तर आदि लिए आये और पूछा - 'क्या आप मुझे जबरदस्ती साथ ले जाना चाहते है।' स्थानीय अधिकारियों की दशा का ध्यान करके मैंने कहा - 'चलिये तो अच्छा ही है।' पंडित जी के लब फड़कने लगे - 'मैं सब कुछ समझ गया हूं। आप मुझे आज से सभा का नौकर न समझिये। ईश्वर जानता है, ये लोग आर्य नहीं हैं। क्या मैं इन बुजदिलों को खुश करने के लिए मैदान से भाग जाऊं। मैं सराय में डेरा करके यहीं रहूंगा' मै तो खिलखिला कर हंसा और पंडित जी को नमस्ते कहकर शिक्रम चलवादी और मालेरकोटे के आर्य समाजी लज्जित होकर आर्य पथिक को सेवा शुश्रूषा में सन्नद्ध हुए।

मालेरकोटले से लौटने के पश्चात् पंडित लेखराम के रोपड़ आर्य समाज के जलसे में २० अप्रैल को सम्मिलित होने का पता लगता है, जहां उनके दो व्याख्यान हुए।

इन्हीं दिनों प्रीतमदेव शर्मा की न्याईं उदासी साधु बालक राम ने भी पंजाब का दौरा शुरू किया था और जिस प्रकार प्रीतमदेव केशवानन्दादि ने स्वामी दयानन्द और आर्य समाज को गालियां देना ही धन संचय करने का साधन समझा था वैसा ही बालकराम ने भी अमल शुरू किया। इसलिए पंडित लेखराम को इसके मुकाबिले में कई जगह जाना पड़ा था। मास मई १८९५ के आरम्भ में उदासी बालकराम भेरे में था, इसलिए पंडित लेखराम ने वहां पहुंचकर बराबर तीन व्याख्यान दिये। यद्यपि शास्त्रार्थ के लिए बालकराम जी तैयार न हुए तथापि भेरा आर्य समाज का वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ मई १८९५ के लिए नियत हो गया।

पंडित लेखराम के घर में सन्तान्तोपत्ति की आशा थी, इसलिए वह १५ मई १८९५ को लाहौर से अपनी धर्म पत्नी को साथ लेकर अपने घर कहूटे में पहुंचे जहां १८ मई शनिवार के दिन प्रातः ९ और १० बजे के बीच में उनके यहां पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नामकरण संस्कार वैदिक रीति से करके २२ मई को आर्यपथिक ने फिर यात्रा आरम्भ कर दी। ३६ वर्ष के आयु में विवाह करके जब पुत्र उत्पन्न हो तो उसके आनन्द में एक साधारण पुरुष सब कुछ भूल जाता है, परन्तु यहां तो अपने पत्र द्वारा मंत्री जी से प्रतिज्ञा कर चुके थे कि गूजरखां और तक्का में विशेष कार्यों के लिए २३ और २४ मई को ठहरते हुए २५ को भेरा आर्य समाज के उत्सव में सम्मिलित हो जायेंगे। और ऐसा ही किया भी।

भेरा आर्य समाज के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पंडित लेखराम जी अपने पुरुषार्थ को सफल देखकर गद्गद् हो रहे थे। साधु

बालकराम को भी निमंत्रण भेजा गया परन्तु वह आकर अपनी अप्रतिष्ठा कब करता था ? यहां आपके एक व्याख्यान का विषय था 'आजकल के नौजवान (युवक) और उनकी हिम्मत ।' इस व्याख्यान में आर्य पथिक ने कहा 'जो युवक व्यायाम नहीं करते वे खाकर कुछ पचा नहीं सकते और जब काफी भोजन नहीं खाते तो बल कहां से आवे । देखो हस्पताल के बीमारों की खुराक गवर्नमेन्ट की ओर से नियत है - आटा आधा सेर, दाल, एक पाव, घी एक छटांक, चावल एक पाव । हमारे युवक हस्पताल के बीमारों से भी बदतर हैं कि दो तीन फुलकियां खाकर उठ खड़े होते है ।' पंडित लेखराम जी के व्याख्यान का यह भाग उनके सब साथियों और नगर निवासियों को कण्ठस्थ हो गया था । २७ के प्रातः हम सब भेरा से चले, और ७-१२ बजे लालमूसा में पहुंचकर स्नान सन्ध्यादि सारी जमात ने किया । लगभग ६ वा ७ उपदेश थे । भोजन बनवाने का काम पंडित लेखराम ने अपने जिम्मे लिया जब भाजी आदि के साथ आटे की पूरियां लाकर रक्खी गई तो आध सेर आटे वाला मामला सबको हंसाता रहा । भोजन के समय आर्य पथिक सबको टोकते जाते थे परन्तु मेरे साथ उनका साम्मुख्य हो गया । दो पुरियां उन्हें दी जाती तो दो ही मुझे । इस प्रकार जब सब हार गये और हम दोनों भी सत्रह-सत्रह पुरियां खा चुके तो पंडित जी ने हाथ धो लिए और मैंने दो और लेकर बस की । तब पंडित जी बोले - 'लालाजी ! मैं तो आपको रईसों में ही शुमार करता था । आपने तो गजब कर दिया ।'

पंडित लेखराम वैसे तो बड़ी टेढ़ी प्रकृति के दिखाई देते थे, परन्तु बड़े ही हंसमुख और सरल हृदय, वह मक्कारी और झूठ को सहन नहीं कर सकते थे । भोजन के पश्चात् पुत्रोत्पत्ति के उपलक्ष्य में पंडित लेखराम से सहभोज मांगा गया । पंडित जी ने उस समय के सारे भोजन का व्यय अपने पास से देकर सबको प्रसन्न कर दिया ।

भेरे से लौटकर पंडित लेखराम ने अभी जीवन चरित्र के काम को हाथ ही लगाया था कि फिर उनके लिए मांग क्वेटे से आया । इधर तो यह हाल और उधर जीवन चरित्र का मसाला पड़ताल कराने के लिए अन्तरङ्ग सभा ने प्रत्येक लेख की तीन प्रतियां तैयार करने का प्रस्ताव स्वीकार किया । पंडित लेखराम भी ऐसी अवस्था में बड़े तङ्ग आ जाते थे । सभा के मंत्री के नाम जो पत्र १७ मई को कहूटे से लिखा उसमें दर्ज था - 'आर्य प्रतिनिधि-सभा के दो अधिवेशनों में लाला मुंशीराम के, विशेष आवश्यकताओं के कारण, न सम्मिलित होने से काम पूर्ण न हुआ । जो रेजील्यूशन पास हुए हैं मैं उनके साथ सहमत नहीं हूं । तीन कापियां कराने में जो तीन सौ रुपये मुफ्त में फालतू खर्च होंगे,...एक कापी का होना तो जरूरी है किन्तु एक से अधिक नहीं, उससे

केवल व्यय ही बढ़ेगा। आप जानते हैं कि मैं यात्रा में, और विशेषतः उपदेश के लिए यात्रा में, जीवन चरित्र का काम बिल्कुल नहीं कर सकता। और यात्रा की असावधनता में पत्रों के गुम हो जाने का सन्देह रहता है। अब मैं सब पत्र लाला जीवनदास के मकान पर ताले बन्दकर आया हूं, साथ नहीं लाया।'

आर्य पथिक के ऊपर लिखित दृढ़ प्रतिबन्ध करने पर भी उन्हें क्वेटे की ओर जाने की आज्ञा मिली। तदनुसार वह ८ जून १८८५ को लाहौर से चलकर मान्टगुमरी पहुंचे जहां उन्होंने दो व्याख्यान दिये। १३ जून को सोबी पहुंचकर व्याख्यान दिया और १४ को क्वेटे पहुंच गये। १६ और १८ जून को दो व्याख्यान देने के पश्चात् जुलाई के अन्तिम सप्ताह में आर्य समाज का वार्षिकोत्सव रखवाया।

इन्हीं दिनों मेरठ से पंडित लेखराम को एक पत्र, जालन्धर में घूमता हुआ, क्वेटे में पहुंचा जिसमें लिखा था कि एक हिन्दू सभ्य मुसलमान हो चुका है और दूसरा होने वाला है - और पंडित लेखराम से सहायता चाही थी। क्वेटे से बिना आज्ञा मेरठ जाना कठिन था परन्तु पंडित लेखराम के अन्दर कैसा आत्मा काम करता था उसका पता उनके पत्र से पता लगता है - 'लाला मुंशीराम जी को तार दी है कि इसका स्वयं प्रबंध करें या जैसी आज्ञा हो लिखें तो उसका पालन करूंगा। आप भी उनसे पूछ लें कि क्या बन्दोबस्त किया।'

इधर तो आर्य समाज क्वेटा का वार्षिकोत्सव नियत कराया और उससे पहले धर्म प्रचार का सिलसिला जमाया और इधर घर से बड़ा शोकजनक समाचार मिला। जब पंडित लेखराम घर पर छुट्टी लेकर गये थे उन्हीं दिनों उनका भाई तोताराम, बीमारी के बिस्तर से उठा था, परन्तु दुर्बल अधिक था। क्वेटा में चाचा का पत्र पहुंचा कि १२ जून को भाई का देहान्त हो गया। इस पर १ जुलाई को जो पत्र, क्वेटे से, पंडित लेखराम ने सभा के मंत्री को लिखा वह उनके मानसिक भावों की बड़ी उत्तमता से प्रकट करता है ?-मेरा छोटा भाई तोताराम १२ जून को मर गया परन्तु घर वालों ने मुझे कुछ समय तक सूचित न किया। कल पेशावर से मेरे चाचा का पत्र आया जिससे हाल मालूम हुआ. । हैरान हूं कि क्या करूं। इधर समाज का काम, उधर गृह की आपत्ति, हैरानी पर हैरानी पहुंचती है और वहां भी बहुत सा हर्ज है। लाचार मैंने आज ही घर पत्र लिखा है कि यदि वे मुझे आज्ञा दे तो जुलाई के अन्त तक क्वेटे रहूं, नहीं तो पत्र आने पर सूचना दूंगा।

मालूम होता है कि घरवालों ने, पंडित लेखराम का अपनी धार्मिक संस्था से असीम प्रेम देखकर, फिर उन्हें तंग नहीं किया। क्योंकि क्वेटे मे दो और व्याख्यान देकर हम उन्हें बलूचिस्तान का दौरा करते पाते हैं। २ जुलाई १८९५ को क्वेटे से चलकर बोलान, दोजान, कोलपुर, हिरक चतरजई,

पनीरबन्द आदि में प्रचार और वेद प्रचार निधि के लिए धन एकत्र, करते क्वेटे में लौट आये। फिर क्वेटा आर्य समाज के वार्षिकोत्सव से पहले दो व्याख्यान देकर नगर निवासियों को तैयार किया और वार्षिकोत्सव में दो व्याख्यान देकर लौट आये।

परन्तु क्या पंडित लेखराम भाई के मरने से १ महीना १० दिनों के पश्चात् घर लौटे ? दीना नगर से तार आया था कि मुसलमानों के साथ शास्त्रार्थ ठन गया है तब आर्य पथिक घर कैसे जाते ? ३० जुलाई को क्वेटे से चलकर २१ जुलाई को रुक जंक्शन स्टेशन पर प्रातः दस बजे 'ईश्वर प्राप्ति' विषय पर व्याख्यान दिया और सीधे चलकर प्रथम अगस्त की रात को दीनानगर रेलवे स्टेशन पर पहुंच गये। यहां मौलवी अकबर अली और मौलवी चिरागुद्दीन महम्दी मत के प्रचारक, पहले से जमे हुए थे, परन्तु शास्त्रार्थ के लिए सामने न आये। तब दो अगस्त से आरम्भ करके मौलवियों के मुकाबिले में तीन जबरदस्त व्याख्यान दिये, और जनता के आग्रह पर फिर तीन दिन और ठहरकर 'वैदिक धर्म की श्रेष्ठता' 'सन्ध्या की आवश्यकता' और 'सच्चाई का मजबूत चट्टान' विषयों पर बड़े सारगर्भित व्याख्यान दिये। इनका प्रभाव उस समय के स्थानिक मंत्री जी इस प्रचार वर्णन करते हैं - 'किसी वार्षिकोत्सव में इतनी जनसंख्या उपस्थित नहीं हुई और पंडित' (लेखराम) जी के व्याख्यानों से लोगों के हृदय में जो सहानुभूति आर्य समाज के साथ उत्पन्न हुई है, उसका भी पहला ही अवसर है। पंडित जी के व्याख्यानों के पश्चात् यहां सन्ध्या पुस्तकों की बड़ी मांग हो रही है। जहां तक मेरा ख्याल है कोई भी आर्य समाज का मेम्बर और धर्मात्मा हिन्दू न होगा जो अब भी दो घन्टे व्यय करके दो काल सन्ध्योपासना न करेगा।

८ अगस्त को अमृतसर पहुंचकर आर्य-पथिक ने 'धर्म के मजबूत चट्टान' विषय पर व्याख्यान दिया और ९ अगस्त को 'सत्य के स्रोत' विषय पर। यहां पर ही मुरादाबाद की तार के साथ प्रधान आर्य प्रतिनिधि की भी आज्ञा पहुंची कि मुरादाबाद में जाकर एक भाई को ईसाई मत के फन्दे से बचा लाइये। आर्य पथिक बिना किसी नुनु नच के मुरादाबाद चल दिये। खन्ना (जिला लुधियाना) का श्रीराम सारस्वत ब्राह्मण ईसाई हो चुका था जिसको वैदिक धर्म का अनुयायी बनाया और प्रायश्चित करने के पश्चात् नगर कीर्तन करते हुए उसे आर्य समाज मन्दिर मुरादाबाद में लाकर ५०० पुरुषों की उपस्थिति में शुद्ध किया और सब भाइयों ने श्रीराम के साथ खान-पान का व्यवहार आरम्भ कर दिया। उन दिनों सनातन धर्म सभा में आलाराम सागर के लोगों को आर्य समाज के विरुद्ध भड़का रहा था परन्तु ११ से १५ अगस्त के बीच प्रबल व्याख्यान देकर आर्य पथिक ने हिन्दू मात्र को अपने साथ कर लिया और फिर अम्बाले का तार

आने पर वहां को चल दिये । यहां पर ईसाइयों ने कुछ शोर मचाया हुआ था जिसके मुकाबिले में पंडित लेखराम जी के व्याख्यान बड़े प्रभावशाली हुए और सर्वसाधारण को ईसाई मत की निर्बलताओं का परिज्ञान हुआ ।

अम्बाला छावनी में जिस काम के लिए आये थे उसे करके २३ अगस्त को शिमला आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए । शिमला में पंडित लेखराम के तीन व्याख्यान हुए । जिनमें से अन्तिम व्याख्यान टाउन हाल (Town Hall) में आर्य समाज के नियमों पर हुआ । इस व्याख्यान से प्रभावित होकर बहुत से नये सज्जन आर्य समाज के सभासद तथा सहायक बने ।

शिमले से लौटते हुए पंडित लेखराम को वर्षा में भी भीगते-भीगते आना पड़ा और अम्लाबा में भी बादल न खुले । वहां अभी कपड़े सुखाने का बन्दोबस्त करने ही लगे थे और एक व्याख्यान भी दे चुके थे कि मेरा तार पहुंचा और आर्य पथिक सीधे जालन्धर पहुंच गये । तीसरे पहर रेल से उतरते ही मेरे पास आये । मैंने उनको कष्ट देने का कारण बतलाया । धर्मशाला पर्वत के आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था और उसी समय कालिज पार्टी ने भी उत्सव मनाना निश्चित किया । जहां उधर से बड़े-बड़े प्रसिद्ध उपदेशक, लीडर और राय साहबान जाने वाले थे । वहां हमारी ओर से लाभचन्द्र भजनीक को लेकर अकेले पंडित कृपाराम जी पहुंचे हुए थे । उस स्थान में पंडित लेखराम को भेजने का विचार था । २९ अगस्त को पंडित लेखराम मेरे पास पहुंचे और धर्मशाला में ३१ अगस्त को नगर कीर्तन था, यदि दूसरे दिन प्रातःकाल ही चल देते तो धर्मशाला आर्य समाज के सभासदों के डांवाडोल हृदयों को शान्ति मिल सकती थी ।

मेरी सारी कहानी सुनकर पंडित लेखराम बोले 'यह देखिये ! लगातार सफर में सारे कपड़े मैले हो गये, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला । फिर शिमले से आते हुए उन मैले कपड़ों में से एक भी सूखा नहीं बचा । मुझे परसों से ज्वर आता है और जुकाम साथ है बतलाइये । मैं जाने की अवस्था में हूं ?' मेरी आंखों से अश्रुधारा बहने लगी और मैंने कहा-'पंडित जी ! आप अब आराम कीजिए, धर्मशाला का विचार छोड़ दीजिए । वहां का भुगतान हो जायेगा ।' इतना कहकर मैंने पंडित जी को उनके निश्चित कमरे में उतारा और कपड़े सुखाने के लिए अंगीठी जलवा दी, क्योंकि उन दिनों व्यापक झड़ी लगी हुई थी । पंडित लेखराम को भोजन कराके मैं अपनेकाम में लग गया और फिर उस रात उन्हें न मिला । दूसरे दिन प्रातः मुकदमों का प्रबंध करके मैं कचहरी जाने की तैयारी करने लगा था कि पंडित लेखराम कपड़ों का बैग बाहर रखकर मेरे बरामदे में पहुंचे और मुझे अन्दर से बुलाया । जब मैं बाहर पहुंचा तो क्या देखता हूं । कि पाजामा, कोट पहिने पगड़ी का शमला छोड़े

कमर की पेटी हाथ में लिए आर्य पथिक यात्रा को तैयार खड़े है। मुझे देखते ही बोले - 'लालाजी ! २०) रुपये मार्ग व्यय के लिए मंगा दीजिए और अपने दो नये कुर्त्ते भी। ऊपरी सफाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर में सटा हुआ तो शुद्ध वस्त्र ही होना चाहिए।'

मै आर्य पथिक की ओर आश्चर्य से देखने लगा और पूछा 'क्या घर से कोई तार आया है।' उत्तर मिला - 'घर की मुझे कम परवा है वहीं धर्मशाला जाता हूं। क्या किया जाये। जाना ही पड़ेगा।' मैंने बतलाया कि मध्याह्नोत्तर की रेल में मै चला जाऊंगा वह कष्ट न उठावें। पंडित लेखराम, प्रसिद्ध कटु भाषी पंडित लेखराम, प्रेम से सनी हुई वाणी में बोले - 'लालाजी ! आपका यहां से हिलना बड़ा हानिकारक होगा। आपके ही बल से तो हम सब काम करते है। यदि ऐसी छोटी बातों के लिए आपको कष्ट दें तो हम किस मर्ज की दवा है। लीजिए ! जल्दी रुपया मंगाइये, रेल का समय समीप आ रहा है।'

इस दृश्य को स्मरण करके अब भी मेरी आंखों में आंसू भर आते है। आज आर्य समाज की अवस्था पुकार-पुकार कर चिल्ला रही है - लेखराम ! हा ! धर्मवीर, कर्त्तव्य परायण लेखराम !!

रुपये अन्दर से आये, पेटी की बांसली में डालेग ये और आर्य पथिक घोड़ागाड़ी की भी प्रतिक्षा न करके रेलवे स्टेशन की ओर चल दिये।

धर्मशाला में अकेले लेखराम ने सचमुच सवा लाख का काम किया। सनातनी ब्रह्मानन्द भारती ने नियोग की आड़ लेकर आर्य समाज और उसके प्रवर्त्तक को बहुत कुछ कोसा था। उसके मुकाबिले में महात्मा हंसराज जी ने पहले से व्याख्यान दिये थे और नवीन वेदान्त मत का खण्डन भी किया था, परन्तु भारती का प्रभाव न मिटा। तब पंडित लेखराम ने भारती जी का शास्त्रार्थ का घोषणापत्र भेजा। शास्त्रार्थ से तो वह बच गया परन्तु पंडित लेखराम ने विज्ञापन देकर, नवीन वेदान्त मत खंडन और वेदोक्त नियोग के मण्डन विषय पर २ सितम्बर की रात को बड़ा शक्तिशाली व्याख्यान दिया। इस व्याख्यान में स्वामी ब्रह्मानन्द भारती और महात्मा हंसराज जी के अतिरिक्त धर्मशाला में उपस्थित सब सज्जन विद्यमान देखे गये। पंडित लेखराम में एक बड़ा गुण था कि वह विरोधी की वक्तृता को स्वयं सुन आते थे। इसलिए उनके व्याख्यान टाले नहीं जाते थे। इस व्याख्यान ने भारती की सारी लीला को समाप्त कर दिया और जो कल्चर्ड महाशय पंडित लेखराम की लट्ठबाज और पेशावरी गुण्डा कह और लिखकर आर्य पथिक से घृणा का भाव प्रकट किया करते थे, उन्होंने भी इस अपूर्व वक्तृता पर हर्ष प्रकट करके अपने विरोधी विचारों का प्रायश्चित किया।

धर्मशाला से लौटते हुए पंडित लेखराम ने पटानकोट आर्य समाज मंदिर

में 'ईसाई मत खण्डन' पर एक व्याख्यान दिया जिसकी वहां आवश्यकता बतलाई जाती थी और वहां से 'वेद प्रचार निधि' के लिए धन भी एकत्र कर लाये ।

इसके पश्चात् भी कुछ थोड़ा ही काम ऋषि जीवन संबंधी कर पाये होंगे क्योंकि हम उन्हें गुजरातादि आर्य समाजों में भ्रमण करते हुए देखते हैं । फिर मान्टगुमरी में प्रचार करके अक्टूबर मास में ऐबटाबाद में प्रचार करने के अतिरिक्त रावलपिंडी और अमृतसर आर्य समाजों के जलसों में उनका सम्मिलित होना पाया जाता है ।

अमृतसर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव से निवृत्त होकर पंडित लेखराम ने लाहौर में तीन व्याख्यान दिये, जिनमें 'ब्राह्मसमाज के इतिहास' पर दृष्टि डालते हुए जो व्याख्यान हुआ वह बड़ा ही आन्दोलन पूर्ण था । लाहौर से चलकर ३ नवम्बर को मुलतान पहुंचे जहां ५ नवम्बर तक तीन व्याख्यान दिये । ६ नवम्बर को आराम करके ७ को डेरागाजीखां पहुंचे जहां उन्होंने उसी सायंकाल के समय 'धर्म की आवश्यकता' पर व्याख्यान दिया । फिर १० नवम्बर तक तीन और व्याख्यान देकर ९ नवम्बर को मुजफ्फरगढ़ पहुंचे । वहां दो व्याख्यान दे और करोड़ आर्य समाज में प्रचार करके लाहौर लौट गये ।

जीवन चरित्र का थोड़ा ही काम कर सके थे कि लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में भाग लेना पड़ा । नगर कीर्तन के समय नगर प्रचार के अतिरिक्त १ दिसम्बर १८९५ को वार्षिकोत्सव का अन्तिम व्याख्यान दिया जिसमें सबसे अधिक जनसंख्या थी । व्याख्यान पर श्रोता गण इतने मोहित हुए कि सभा समाप्त होने के एक घण्टा पीछे तक बराबर जमकर बैठे रहे ।

इन्हीं दिनों आर्य पथिक का सबसे बड़ा ग्रंथ 'पुनर्जन्म' विषय पर छपकर तैयार हो गया और आर्य जनता मात्र ने उसका बड़े आदर से सत्कार किया ।

लाहौर के उत्सव के पश्चात् फिर जीवन चरित्र का कार्य आरम्भ किया था आर्य पथिक के लिए पुनः मांग आने लगी । ८ दिसम्बर को उनका व्याख्यान लुधियाना नगर में हुआ । १० को माछीवाड़ा ग्राम में धर्म प्रचार करके १२ दिसम्बर १८९५ को रोपड़ पहुंचे जहां १३ तक दो व्याख्यान दिये । मूर्ति पूजा विषय पर पौराणिक पंडितों के यहां शास्त्रार्थ भी हुआ ।

कहां रोपड़ और कहां शरकपुर ! दोनों रेलवे लाइन से दूर-परन्तु हम १५ और १६ दिसम्बर को शरकपुर (जिला लाहौर) में व्याख्यान देते देखते हैं ।

इस वर्ष का दौरा भी गतवर्षानुसार जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव व्याख्यान पर ही समाप्त हुआ, और वहां से ही आर्य पथिक ने नये वर्ष का कार्य आरम्भ किया ।

जनवरी १८९६ के आरम्भ में ही पटियाला राज्य में पहुंचकर पांच

व्याख्यान दिये। वहां से लाहौर लौटकर जीवन चरित्र में कुछ त्रुटि देख ११ जनवरी १८९६ को फिर मुलतान में ऋषि जीवन संबंधी आन्दोलन के लिए गये। १९ जनवरी से तीन फरवरी को लाहौर से लौटकर फिर जीवन चरित्र का काम होने लगा, परन्तु स्थानीय प्रचार भी साथ-साथ चलता रहा। ९ फरवरी को मियां मीर में और १० तथा ११ फरवरी को अमृतसर में व्याख्यान दिये। वहां से चलकर १४ से २४ फरवरी तक डेरा-इस्माइलखां आर्य समाज में रहे जहां उदासी साधु बालकराम ने शोर मचा रखा था। यहां बड़ी धूम के साथ व्याख्यान हुए। लौटते हुए २५, २६ फरवरी में व्याख्यान दिये और २७ फरवरी के दिन डेरा गाजीखां पहुंच गये। वहां एक पादरी से शास्त्रार्थ करके नगर कीर्तन कराया जिसमें स्वयं थोड़ी थोड़ी दूरी पर व्याख्यान देते रहे और २८ फरवरी को फिर ७०० की जनोपस्थिति में आर्य समाज के नियमों पर व्याख्यान दिया जिसकी सामप्ति पर १३ नये सभासद बने।

इसके पश्चात् लाहौर लौटकर जीवन चरित्र की छपाई के साथ-साथ स्थानीय प्रचार भी करते रहे। फिर १५ मार्च को करनाल पहुंचे जहां नगर कीर्तन में नगर प्रचार करने के अतिरिक्त दो अत्युत्तम व्याख्यान दिये। वहां से १८ मार्च १८९६ को चलकर १९ को दिल्ली में 'वैदिक धर्म की श्रेष्ठता' पर व्याख्यान दिया। और वहां से सीधे अजमेर पहुंचकर वहां के आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वार्षिकोत्सव की कार्यवाही में तो पंडित लेखराम के दो बलयुक्त व्याख्यान हुए ही परन्तु नगर कीर्तन में एक ऐसी घटना हुई जिसे अजमेर आर्य समाज के वृद्ध सभासद् अभी तक नहीं भूले हैं।

आर्य पथिक भजन मंडली के साथ झूमते हुए जा रहे थे, और बीच में कहीं-कहीं व्याख्यान भी देते थे। मार्ग में कुछ मुसलमान भाइयों से बातचीत होने लगी। पंडित लेखराम के उत्तर सुनकर कुछ मुसलमान भड़क उठे। अकेला लेखराम न यार न मददगार। परन्तु क्या लेखराम ने अपना धर्म प्रचार का काम बन्दकर दिया ? नहीं। कहीं सुना था कि विधर्मी के धर्म मंदिर से ३० कदम की दूरी पर प्रत्येक धर्म प्रचारक को अपने मत के समर्थन करने का अधिकार है। आप दर्गाह के द्वार पर पहुंचे। मुसलमान आश्चर्य से इनकी क्रिया को देख रहे थे। लेखराम ने दर्गाह के द्वार से उच्च स्वर से कदम-कदम गिनने आरम्भ किये और तीसवें कदम (पग) पर पहुंच, एक छोटे पुल पर खड़े होकर धर्म प्रचार शुरू कर दिया। 'कब्रपरस्ती' और 'मुर्दापरस्ती' इत्यादि का जबरदस्त खंडन होने लगा। मुल्लाओं ने बहुतेरा भड़काया परन्तु मुसलमान सर्वसाधरण जनता ने (जो एक सहस्र की संख्या में एकत्र हो गई थी) वहदानियत (एक ब्रह्मवाद( की एक-एक चोट पर वक्ता के साथ सहानुभूति प्रकट की। उस समय तक आर्य समाजियों को भी होश आ चुका था। चुपके

से दो चार देखने गये कि लेखराम पर कैसी बीती, क्या मारा गया या कहीं भाग कर बच गया। किन्तु उनके आश्चर्य की सीमा न रही जब उन्होंने प्रचारक के व्याख्यान का प्रभाव अपनी आंखों से देखा और मुसलमान जनसाधारण को वक्ता के वशीभूत पाया।

अजमेर से लौट कर पंडित लेखराम ने एक सप्ताह ही जीवन चरित्र का काम किया होगा कि मुस्तफाबाद (जिला अम्बाला) के उत्सव के लिए उनकी मांग आई। १०, ११, १२ अप्रैल उस उत्सव के सम्मिलित रहे जिसमें साधारण व्याख्यानों के अतिरिक्त २४ और २६ अप्रैल तक हम पंडित लेखराम को दीना नगर आर्य समाज वार्षिकोत्सव में सम्मिलित पाते हैं। ७ जून १८९६ को जालन्धर आर्य समाज में 'आर्यों के जातीय त्यौहार' विषय पर व्याख्यान देना छपा है।

ऐसा मालूम होता है कि इन दिनों विशेष प्रकार से फिर पंडित लेखराम जालन्धर में स्थिति हो गये थे, और अपनी धर्म पत्नी तथा बच्चे सहित (जिसका नाम सुखदेव रखा था) मुहल्ला 'कोट कृष्णचन्द्र' में किराये के मकान में निवास करते थे।

•

# आदर्श ब्राह्मण गृह

जालन्धर में ही पंडित लेखराम ने वास्तविक गृहस्थाश्रम का आरम्भ किया, इसी स्थान पर देवी लक्ष्मी जी की गोद हरी हुई और अन्त को इसी भूमि में पंडित लेखराम को अपने इकलौते पुत्र का अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा, इसलिए उनके गृहस्थ जीवन का पूरा वृत्तान्त इसी स्थान में देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पंडित लेखराम जी का मेरे साथ विशेष प्रेम था। इसके बतलाने की कोई आवश्यकता नहीं, फिर भी वह उस समय सारे आर्य जगत को एक परिवार समझने लग गये थे और इसलिए उनका किसी स्थान विशेष से प्रेम नहीं रह सकता था। परन्तु पंडित लेखराम जी की धर्मपत्नी, श्रीमती लक्ष्मी देवी जी उच्च आदर्श को ग्रहण नहीं कर सकी थीं। उनका मन केवल जालन्धर निवासियों, आर्या स्त्रियों से ही मिला हुआ था। लाहौर में वे जब तक रहीं अपने आपको परदेश में समझती रहीं और इसलिए वहां से घर चली गई थीं।

जब पुत्र उत्पन्न हो चुका, उसके पश्चात् स्वभावतः उन्हें भरी गोद लेकर उसी जालन्धर नगर में लौटने का उत्साह हुआ जहां से वह गोद हरी लेकर

गयी थी । इसी अन्तर में पंडित लेखराम का लाहौर में रखना भी कुछ अनावश्यक ही प्रतीत हुआ क्योंकि जीवन चरित्र की तैयारी में उनको मुझसे अधिक सहायता मिल सकती थी । तब यही ठीक समझा गया कि उन्हें लाहौर आने की आज्ञा दी जावे ।

इन्हीं दिनों पंडित लेखराम जी के पिता का देहान्त हो गया, और इसलिए १६ से १८ मई १८९६ तक की छुट्टी लेकर वह अपने निवास स्थान कहूटा को चले गये और वहां से अपनी धर्म पत्नी और पुत्र को साथ लेकर जालन्धर आ गये ।

पंडित लेखराम को मैं एक सच्चा ब्राह्मण मानता हूं और उनके गृह को आदर्श ब्राह्मण गृह मानता था क्योंकि वह त्याग का जीवन व्यतीत करते थे । चिरकाल तक उन्हें २५) मासिक वेतन मिलता रहा और उसी में वह अपना निर्वाह करते रहे । फिर जब उनका विवाह हो गया तो सभा ने स्वयं उनको ३०) देना आरम्भ कर दिया, आर्य पथिक ने वेतन वृद्धि के लिए कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया था । फिर जब पंडित लेखराम के घर पुत्र उत्पन्न हुआ और मुझे मालूम हुआ कि उन्होंने 'हिन्दू परस्पर सहायक भण्डार' में सम्मिलित होने के अतिरिक्त १७ जून १८९५ से सन् लाइफ इन्स्योरेन्स कम्पनी में अपने जीवन का बीमा करा लिया, तब मैंने सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करके उनका वेतन ३५) मासिक करा दिया था । शायद यह समझा जावे कि पंडित लेखराम को अपनी रची हुई पुस्तकों की बिक्री से अधिक आमदनी होती होगी, परन्तु उनकी पुस्तकों का सारा हिसाब पड़ताल करने से मुझे ज्ञात हुआ कि जब तक आर्य पथिक की पुस्तकों का सारा प्रबंध सद्धर्म प्रचारक यंत्रालय के अधीन (शायद सन् १८९५) नहीं हो गया था तब तक उन्हें पुस्तकों से एक कौड़ी का भी लाभ नहीं होता रहा । पंडित लेखराम के पीछे कईयों ने 'आर्य मुसाफिर' नाम धराये, और उसके सहारे सहस्रों रुपये कमाये, परन्तु आर्य पथिक ने धन जमा करना अपना उद्देश्य रखा ही न था और यदि वह अपने जीवन का बीमा न करा जाते तो देवी लक्ष्मी के पास अपने निर्वाह के लिए शायद थोड़े से आभूषणों के अतिरिक्त कुछ भी न बचता । और वह बीमे का आया हुआ धन क्या लक्ष्मी ने बर्ता ? सच्चे ब्राह्मण लेखराम ने अपनी धर्मपत्नी को भी ब्राह्मणी बनाया था और उन्होंने बीमा का पूर्ण २०००) रुपया गुरुकुल कोष में जमा कराके सदा के लिए आर्य पथिक के स्मारक में एक विद्यार्थी पढ़ने की बुनियाद रख दी, मुझे आशा है कि सच्चे ब्राह्मणकुल के पवित्र दान से पढ़े हुए ब्रह्मचारी भी त्यागी और सच्चे ब्राह्मण ही निकलेंगे ।

पंडित लेखराम प्राचीन ब्राह्मणों की तरह त्यागमूर्ति तो थे, परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि मध्य कालीन चरसिया वैराग्य के वह दास थे । नहीं

प्रत्युत गृहस्थ जीवन का आदर्श भोगने की उनके कर्मों में सदा चेष्टा दिखाई देती है । थोड़े से धन ही पुत्र के पालन और गृहस्थ की रक्षा का बड़ा उत्तम प्रबंध किया करते थे । सुखदेव को गोद में लेकर खिलाते देख कोई विचारशील पुरुष नहीं कह सकता था कि सच्चे प्रेम का उनमें अभाव है । इसके अतिरिक्त कुछ अन्य वैरागी आर्यों की तरह वह अपने परिवार से भी उदासीन न रहते थे । परन्तु परिवार के प्रेम में फंसकर अपने सिद्धान्तों से गिरकर आत्मघाती कभी नहीं बनते थे । इसके प्रमाण में आर्य पथिक का जालन्धर से २४ जून १८९६ को अपने चाचा के नाम लिखा हुआ पत्र काफी है । इस पत्र में पंडित लेखराम लिखते हैं - 'पिताजी के देहान्त का समाचार घर वालों ने मुझे नहीं भेजा था । आपके पत्र से ही हमको पहले - पहल सूचना मिली । मैं ११ या १२ दिन घर रहकर लौट आया और लालासाहब (पिताजी से तात्पर्य) तथा तोताराम - दोनों के मृतक शरीरों की भस्म भी साथ लाया, जो मार्ग में शास्त्र की आज्ञानुसार जेहलम नदी में प्रवाह कर दी । मैं अब यहां चार महीने रहूंगा । एक मकान २) मासिक किराये पर लिया हुआ है । स्वामी जी का जीवन चरित्र यहां साफ करके, फिर छपवाया जावेगा । जब तक यह न छप जाये तब तक यहां ही रहूंगा...घर में (अर्थात कहूटे में) अब कोई आदमी नहीं है । सय्यदपुर के मकान का तो अब फैसला हो ही गया, कहूटे के लोगों से आप परिचित ही हैं, बतलाइए अब मकान कहां बनाऊं । आपने तो रावलपिंडी में बना लिया, और आप आयु भर वहीं रहेंगे.....कोई फूल और कोई कहूटे की सलाह देता है । आर्य सामाजिक भाई प्रत्येक अपने-अपने शहर में सम्मति देते हैं । मैं चाहता था कि यदि ऐसा होता जहां आप भी समीप होते तो उचित था । मुझे यद्यपि अब सारा जगत ही कुटुम्बवत् दिखाई देता है और अपने संबंधियों के साथ भी जनसाधारण से बढ़कर प्रेम नहीं रहा तथापि रक्त का संबंध भी कुछ प्रभाव रखता है । आप तो सम्मति उचित समझें अवश्य लिखें....चिरंजीव सुखदेव के दांत निकल रहे हैं, छः निकल चुके हैं, इसलिए कभी दस्त आ जाते हैं - वैसे वह स्वस्थ है, और उसकी माता भी स्वस्थ है ।' इस संबंध में पंडित लेखराम की दिनचर्या का समय विभाग, जो उन्होंने अप्रैल १८९६ ई० की समाप्ति पर लिखा था, बड़ा प्रकाश डालता है :-

(१) 'चार घड़ी अर्थात् सवा घंटा रात रहे उठकर शौच के लिए जंगल में जाना फिर दन्त धावन और स्नान तथा सन्ध्या, और अग्निहोत्र सूर्य के उदय होने पर । अग्निहोत्र लक्ष्मी जी (आर्य पथिक की धर्म पत्नी जी) कर लिया करें और कभी-कभी मैं स्वयं भी कर लिया करूंगा ।

प्रत्येक दिन व्यायाम करना, ठीक ४० दण्ड ।

(२) वेद पाठ एक घंटा, कुरान, तोरेत, इंजीलका स्वाध्याय एक घंटा या अन्य मतों संबंधी पुस्तकादि । ग्रंथ निर्माण का कार्य ११ बजे तक ।

(३) १२ बजे से २ बजे तक - भोजन, विश्राम, गृहस्थ के कार्यादि और प्यारी लक्ष्मी को पढ़ाना ।

(४) ३ से ५ बजे तक पुस्तकावलोकन तथा लेख, विशेषतः ऐतिहासिक विद्या संबंधी ।

(५) मल-त्याग, शौच, सन्ध्या, भ्रमण, व्याख्यान अर्थात् लोगों को सद्धर्म का उपदेश देना । अग्निहोत्र, भोजन, घर का प्रबंध - ६ से ९ बजे तक ।

(६) अपने संशोधन के संबंध में विचार । सोने से पहले मुंह हाथ पांव धोकर कुल्ला करना और परमेश्वर का ध्यान करना । रात के दस बजे सोना, पूरे छः घंटे सोना, कम बिल्कुल नहीं । एक चारपाई पर न सोना चाहिए, ऋतुगामी न होना चाहिए ।

(७) मल त्याग के लिए अधिक समय न बैठना चाहिए, इससे बवासीर हो जाती है ।

(८) खाना जहां तक हो सके चबाकर खाना, ३२ बार यदि प्रत्येक ग्रास चबाया जावे तो कोई बीमारी नहीं होती । खाने के पश्चात् तत्काल ही लघुशंका के लिए बैठना चाहिए क्योंकि इससे मसाने की बीमारी नहीं होती ।

(९) प्रातःकाल उठकर पहले अनुमान आध पाव के बासी पानी नाक पड़क कर पीना, जिससे अजीर्ण कभी नहीं होता ।

(१०) पाजामे के अन्दर लंगोट रखना चाहिए और लंगोट समेट नहाना चाहिए । लघुशंका के पश्चात् पानी या मिट्टी से शुद्धि करनी चाहिए, जिससे शरीर अपवित्र न हो । व्यर्थ क्रोध न करना चाहिए, कटु वचन तथा झूठ से अलग रहना और 'दीन-ए-इस्लाम' की विषयुक्त शिक्षा के बुरे प्रभाव को दूर करने का प्रयत्न और इसी प्रकार दूसरे मतों का भी, और वैदिक धर्म का प्रचार । ईश्वर ! मेरी इस इच्छा को आप पूर्ण कर दो ।

जालन्धर में गृहस्थ जीवन व्यतीत करते हुए भी जहां ऋषि जीवन-चरित्र की तैयारी का काम जारी था स्थानीय प्रचार के अतिरिक्त बाहर धर्मोपदेशों के लिए जाना भी बन्द नहीं हुआ था । २९ से ३१ मई १८९६ तक रोपड़ आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर अपने व्याख्यानों से सोये हुए कायर हिन्दुओं को वीर आर्य बनने की प्रेरणा करते रहे । द्वारिका मठ के शंकर स्वामी इसी वर्ष की ग्रीष्म ऋतु में जालन्धर पधारे थे । उनके मुकाबिले में जो बड़े-बड़े आर्य विद्वानों के व्याख्यान हुए उनमें से पंडित लेखराम का व्याख्यान बहुत ही हलचल मचाने वाला था । इन्हीं दिनों पंडित लेखराम ने कर्तारपुर (जिला जालन्धर) में आर्यधर्म की रक्षा के लिए दो बार जाकर धर्मोपदेश दिये और ऐसी जबरदस्त धार्मिक हलचल मचाई कि वहां एक प्रबल आर्य समाज स्थापित हो गया ।

यह पहले लिखा जा चुका है कि विवाह के दिन ही पं० लेखराम जी ने अपनी धर्म पत्नी को पढ़ाना आरम्भ कर दिया था। जिस प्रकार अन्य विषयों में उनके उपदेश क्रियात्मक होते थे उसी प्रकार स्त्री शिक्षा का प्रचार भी जीवन द्वारा करते थे। जालन्धर में रहते हुए लक्ष्मी देवी जी को स्त्री समाज के अधिवेशन और अन्य धार्मिक उत्सवों में भी सम्मिलित होने के लिए भेजते रहे। जिस प्रकार स्वयं सच्चे ब्राह्मण बने हुए पुरुष जाति के उद्धार के लिए काम करते थे, उसी प्रकार लक्ष्मी देवी जी को स्त्री जाति की सेवा के लिए तैयार करना चाहते थे। मुझसे धर्म वीर ने देशान्तर प्रचार के लिए गोष्ठी करते हुए अपने जीवन का सारा समय विभाग कई बार बतलाया था। इस समय विभाग में प्रायः लक्ष्मी देवी का मुख्य भाग होता था। यदि वानप्रस्थ का विचार आता तो उसमें भी लक्ष्मी देवी का जिक्र आता। धर्मवीर लेखराम लक्ष्मी देवी को क्या बनाना चाहते थे, वह उस समय विभाग से पता लगता है जो मैं ऊपर उद्धृत कर चुका हूं। लक्ष्मी देवी में विनय और लज्जा का भाव बहुत ही विचित्र था, जिन दो देवियों से उनका हृदय मिला हुआ था, उनके सिवाय बहुत कम स्त्रियों से भी खुलकर बात करती। पंडित लेखराम जी चाहते थे कि उनकी धर्म पत्नी प्रचार विषयक योजना में उनसे सहायता लेकर अपनी बहिनों को वैदिक धर्म की ओर प्रेरित करें। उन्होंने लक्ष्मी देवी का हौसला बढ़ाने के लिए मुझ से साधन पूछे। मैंने सम्मति दी कि श्रीमती लक्ष्मी देवी जी को अपने साथ आर्य समाजों के वार्षिकोत्सवों पर ले जाया करें। पंडित लेखराम ने उसी पर अमल करना शुरू कर दिया। अम्बाला और मथुरा आर्य सभाओं के वार्षिकोत्सवों पर देवी जी को अपने साथ ले गये जहां से उनका पुत्र बीमार होकर लौटा। मथुरा आर्य समाज का वार्षिकोत्सव १६, १७ अगस्त १८९६ को था। बीमार पुत्र को वहां से जालन्धर छोड़कर पंडित लेखराम शिमला आर्य समाज को वार्षिकोत्सव में सम्मिलित हुए। वहाँ से जब २६ अगस्त को जालन्धर लौटे तो प्यारे सुखदेव की बीमारी बढ़ी हुई देखी। हम सब ने चिकित्सा तथा निदान कराने में कुछ उठा नहीं रखा, परन्तु हम सब के देखते-देखते पंडित लेखराम का प्यारा पुत्र २८ अगस्त १८९६ के दिन सवा वर्ष की आयु में इस भौतिक शरीर को त्यागकर स्वर्गलोक का पथगामी बना। उस समय पं० लेखराम की सहन शक्ति का मैंने चमत्कार ही देखा था। किसी प्रकार के भी शोक की समीप नहीं आने देते थे।

परन्तु बच्चे की दुखिया माता के हृदय पर बड़ा भारी वज्रपात दिखाई देता था। जिस जालन्धर की भूमि में पुत्ररूपी रत्न प्राप्त किया था उसी भूमि पर उसकी राख करके फिर कोमल हृदय भारत रमणी से कब वहां निवास किया जा सकता था। धर्म पत्नी को लेकर पं० लेखराम घर पहुंचाने चले गये और दो दिनों के पश्चात् पूर्ववत् ही धर्म प्रचार में सन्नद्ध हो गये।

# भ्रमण और प्रचार

जुलाई के आरम्भ में पसरूर (जिला सियालकोट) से पंडित लेखराम के लिए मांग आई। आ०प्र० सभा के एक प्रचारक ने महम्मदी जगत् को हिला दिया था। इस पर तीन महम्मदी प्रचारक बुलाये गये जिनसे शास्त्रार्थ की छेड़छाड़ शुरू हुई, तब पंडित लेखराम के लिए तार पहुंचा। १८ जुलाई १८९६ को आर्य पथिक जालन्धर से चले और १९ को सायंकाल पसरूर में पहुंच गये। उसी समय बड़ा भारी नगर कीर्तन हुआ। २० जुलाई को पहला व्याख्यान 'वैदिक धर्म की श्रेष्ठता' पर हुआ जिसमें ८०० हिन्दुओं के साथ २०० मुसलमान भी उपस्थित थे। व्याख्यान की समाप्ति पर पसरूर में उपस्थित पांच मौलवियों को प्रश्न करने का अवसर दिया गया परन्तु सिवा एक मौलवी के और कोई न उठा और उसने भी केवल आर्य पथिक की बातों को दोहरा दिया। दूसरे व्याख्यान का विषय था 'सच्चाई का मजबूत चट्टान' मौलवी लोगों ने पत्र व्यवहार में समय समाप्त किया और पंडित लेखराम दो और व्याख्यान देकर जालन्धर लौट आये।

पसरूर के संबंध में एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी ने लिखी है जो धर्मवीर लेखराम के निडर आत्मा की साक्षी है। तीसरे दिन पंडित लेखराम व्याख्यान के लिए अभी खड़े होने की तैयारी कर रहे थे कि एक बड़े प्रसिद्ध म्युनिसिपल-कमिश्नर आये और महाशय मथुरादास प्रचारक के पास बैठकर कुछ कानाफूसी करने लगे। आर्य पथिक ने कहा - 'घुसपुस क्या करते हो क्या बात है ?' प्रचारक मथुरादास जी ने कहा कि यह महाशय थानेदार साहब का सन्देशा लाये है कि यदि बलवा हो गया तो पुलिस जिम्मेदार न होगी। आर्य पथिक की आंखे लाल हो गईं और कड़क कर बोले - 'क्या हम युद्ध करने आये है ? हम तो धर्मोपदेश के लिए आये है सो हम जब तक चाहेंगे स्वतंत्रता से करेंगे। जिसका जी चाहे सुने जिसका जी न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो पड़ा हो। हम देखेंगे कौन बलवा करता है। हम थानेदार साहब वा और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।'

जब व्याख्यान के लिए खड़े हुए तो देखा कि टाउन पुलिस के कुछ चौकीदार हाथ भर का लम्बा डण्डा लिए खड़े है। उनकी ओर देखकर अटक-अटक कर कड़कते हुए बोले : 'ओ काली पगड़ी वालो ! अगर व्याख्यान

सुनना है तो अपनी खुशी से ठहरो नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है, अभी चले जाओ । मैं देखूंगा कि कौन मुझे काट जाता है ।'

पसरूर से निवृत्त होकर पंडित लेखराम शिमला आर्यसमाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होने के लिए चले गये । वहां पहले से मिर्जा गुलाम अहमद के चेले ख्वाजा कमालुद्दीन ने अपने मिशन का काम जारी कर रक्खा था । पंडित लेखरान ख्वाजा साहेब के व्याख्यानों को सुनने जाते रहे और फिर आर्य मन्दिर में तीन बड़े जबरदस्त व्याख्यान दिये । महम्मदियों की निमाज के मुकाबिले में आर्यों की सन्ध्या की श्रेष्ठता जतलाई और वैदिक धर्म के सैन्दर्य के भली प्रकार प्रकाशित किया । मुसलमान तो पं० लेखराम के आक्रमणों से मुद्दत से तंग आये हुए थे, परन्तु उन दिनों आर्य पथिक ने एक नई पुस्तक का नोटिस दे रक्खा था । मुसलमान सुन चुके थे कि पं० लेखराम इस पुस्तक में महम्मदी मत

**'हुज्जतुल इसलाम'**

के विरुद्ध अपना सारा जोर लगायेंगे । इससे पहले मिर्जा गुलाम अहमद कादियानी, आर्य पथिक को अकाट्य युक्तियों से तंग आकर, जवाब देने की ताव न रखते हुए उन्हें मौत की धमकी दे चुका था और लिखा था -

'इला-ए-दुश्मन् ना अन व बेरा
बतर्स अज तेगे बरां मुहस ।'

कि महम्मदी तलवार से डरे, इस्लाम के विरुद्ध लिखना छोड़ दे । इस सब अवस्थाओं के होते हुए जब मिर्जा कादियानी के चेले ने हिन्दुओं के अन्धविश्वासों को आर्य समाज पर मढ़ना शुरू किया तो अपने अन्तिम व्याख्यान में पंडित लेखराम ने यह सिद्ध करने के लिए प्रमाण दिये कि इस्लाम के पैगम्बरों ने खुदाई का दावा करके कुफ्र फैलाया है । जो प्रमाण आर्य पथिक ने उस समय दिये थे वे सब 'हुज्जतुल इस्लाम' में पीछे छप गये है । सारा सभा मंडप मनुष्यों से भरा हुआ था । जिनमें आधे मुसलमान थे । जब पंडित लेखराम ने अन्यों के प्रमाण देते-देते एक आयत पढ़ी जिसका अर्थ था - 'मैं खदा के नूर से हूं ।' और इस पर एक कवि का वचन पढ़ा -

'ब जाहिर दूर अन्दर से जो आहे,
शमए नूर वे कफ खोआहे ।'

जिसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि महम्मद ब्रह्म के प्रकाश से जुदा प्रतीत होता है । परन्तु वह है वही ब्रह्म । मुसलमानों की जमात में से एक युवक मंडल से रहा न गया और उनमें से एक युवक बी०ए० ने चीखकर कहा - 'काफिरों को काटने वाली महम्मदी शमशीर को मत भूल' पंडित लेखराम एक पल के लिए रुक गये, फिर जिधर से शब्द सुने थे उधर आंखे घुमाकर सिंहनाद गुंजा दिया - 'मुझे बुजदिल महम्मदी तलवार की धमकी देता है । मैंने अधर्मी निर्बल मनुष्यों से डरना नहीं सीखा । जानते नहीं हो मैं जान हथेली पर लिए फिरता हूं ।'

सारे हाल में सन्नटा छा गया और व्याख्यान के अन्त तक फिर किसी ने चूं न की। जैसा कि मैं पहले बतला चुका हूं शिमला से पंडित लेखराम सीधे जालन्धर गये थे जहां अपने एकलौते पुत्र का उन्हें अन्त्येष्टि संस्कार करना पड़ा। जालन्धर से परिवार को छोड़कर पंडित लेखराम सीधे बजीराबाद के वार्षिकोत्सव में सितम्बर १८९६ के आरम्भ में ही पहुंच गये इसके विषय में श्रीनारायण कृष्ण जी प्रधान आर्य समाज गुजरांवाला ने लिखा है —

'आर्य पथिक सब बातों पर आर्य समाज के काम तो तर्जीह दिया करते थे। हम लोगों को याद है कि एक बार जब हम लोग वजीराबाद के उत्सव पर गये हुए थे तो वहां हमको समाचार मिला कि पंडित लेखराम का एकलौटा बेटा संसार से चल बसा है। वजीराबाद में पहले उनके आने की खबर बड़ी गर्म थी परन्तु इस शोकजनक समाचार को सुनकर समझा गया कि अब पंडित जी नहीं आ सकेंगे। परन्तु बहुत थोड़ी देर के पश्चात् आश्चर्य से देखा कि वह अपने घर से सीधे उत्सव में आ पहुंचे और ऐसी शोकजनक घटना के होते हुए भी अपने धार्मिक कर्त्तव्य को बड़ी गम्भीरता से पालन करते रहे।'

वजीराबाद के इस वार्षिकोत्सव में मैं भी सम्मिलित था। पहले दिन पंडित लेखराम जी का व्याख्यान प्रातःकाल के समय विभाग में छपा हुआ था, परन्तु राजा सर अताउल्ला और उनके परिवार के सम्मिलित होने के कारण उस समय मुझे खड़ा किया गया। न जाने मुसलमान भाई पंडित लेखराम से क्या आशा रखते थे कि मेरे व्याख्यान को सुनकर विस्मित हो गये। उनकी समझ में न आया कि आर्य मुसाफिर क्यों ऐसा जन-प्रिय तथा शान्ति वर्धक व्याख्यान देता है। मेरा विषय ईश्वर प्राप्ति था और मैंने उसमें महम्मदी बुत और पीर परस्ती की खबर ली थी, इसलिए श्रोतागण को निश्चय हो गया कि पंडित लेखराम ही बोल रहे है।

सायंकाल के व्याख्यान में मेरा नाम था, इसलिए उस समय कादियानी मिर्जा गुलाम अहमद के चेले हकीम नूरउद्दीन भी तशरीफ लाये। मुसलमानों की भी पर्याप्त उपस्थिति थी। जब पंडित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए, उस व्याख्यान में पंडित लेखराम ने ईश्वर का स्वरूप ऐसा खींचा कि मुसलमानों के सिर हिलने लग गये। फिर जब झूठे पैगम्बरों की पोल खोलनी शुरू की तो जहां मुसलमान सर्व साधारण करतालिका ध्वनि से सभा मंडप को गुंजाने लगे वहां मौलवी नूरउद्दीन बहुत खीज रहे थे परन्तु उस समय क्या हो सकता था। आर्य पथिक के व्याख्यान की नगर में धूम मच गई।

सायंकाल हम सब पलकू के किनारे स्रोत की ओर दूर निकल गये और सन्ध्या - वन्दन से निवृत्त होकर रात को लौट रहे थे कि नगर से बाहर एक मस्जिद के खुले मैदान में मौलवी नूरउद्दीन अपना धर्म प्रचार कर रहे थे। रात अन्धेरी थी, हम सब सुनने खड़े हो गये। मौलवी साहब बोले - 'अरे बेवकूफो!

तुम सब बकरों की तरह दाढ़ी हिला रहे थे और वह न समझे कि तुम्हारे ईमान पर कुल्हाड़ा चला रहा है।' इतना ही सुनकर मैंने पंडित लेखराम जी को उनकी कृतकार्यता पर बधाई दी और हम सब भोजनशाला को चल दिये।

मुझे यह भी याद पड़ता है कि दूसरे दिन बाजार में आर्य पथिक की कुछ मुसलमानों से बातचीत होने लगी, जिस पर आर्य पुरुष घबरा गये थे, परन्तु उसका परिणाम अच्छा ही निकला।

हम सब वजीराबाद आर्य समाज के उत्सव में ही सम्मिलित थे कि मुकेरियां के एक भाई वहां के अधिकारियों का पत्र लेकर पहुंचे जिससे पता लगा कि वहां एक विचित्र प्रकार का शास्त्रार्थ रचा गया है। सनातन सभा के किसी पंडित ने एक महाभारत के श्लोक को वेद मंत्र कहकर पेश किया, जिस पर आर्य समाज तथा सनातन सभा के प्रधानों का विवाद हो गया और दोनों के हस्ताक्षर से एक स्वीकार पत्र को स्टाम्प पर लिखा गया। इस स्वीकार पत्र का तात्पर्य यह था कि यदि सनातन सभा का पंडित अपने बोले श्लोक को वेद में दिखा दें तो आर्य समाज के प्रधान ५००) जुरमाना देंगे, परन्तु यदि सनातन सभा का पंडित ऐसा न दिखा सके तो सनातन सभा का प्रधान ५०) जुरमाना देगा। मैंने इस जूआबाजी को अलग करके यह तो हमारा कर्त्तव्य है कि अपने मत का समर्थन किया जावे। बस हम दोनों गुरुदासपुर पहुंचकर इक्के पर ९ सितम्बर को २ बजे दिन को मुकेरियां पहुंच गये। उस दिन मैंने और दूसरे दिन आर्य पथिक ने व्याख्यान दिये। तीसरे दिन २०० की उपस्थिति में सनातनी बड़े-बड़े पंडित भी श्लोक को वेद-मंत्र सिद्ध न कर सके।

परन्तु इस स्थान की एक घटना पंडित लेखराम के हठ और उनके धर्म प्रेम दोनों का परिचय देती है। मैं यतः मंत्रों का उच्चारणादि शुद्ध कर सकता था इसलिए मुकेरियां के आर्य भाई चाहते थे कि शास्त्रार्थ मैं करूं। उनको यह भी डर था कि कहीं पंडित लेखराम अपने अक्खड़पन से उलटा असर न डाल देवें। जब वेदों में आन्दोलन करके देख लिया कि विवादास्पद छन्द वेद मंत्र नहीं प्रत्युत महाभारत का श्लोक है तो मैंने कहा कि हम में से एक को अब जाने दो क्योंकि हम दोनों ने जगराओं आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होना है। और वहां १२ सितम्बर के प्रातः पहुंचने के लिए मुकेरियां से ११ के प्रातःकाल चल देना चाहिए। जाने को मैं स्वयं तैयार हुआ जिस पर तीन-चार बार यही उत्तर मिला कि इक्का नहीं मिलता, फिर यह निश्चय हुआ कि पंडित लेखराम जी जायें। यह निश्चय होना ही था कि पांच मिनटों में बेा तेज इक्का लाकर खड़ाकर दिया गया। पंडित लेखराम जी असल बात ताड़ गये और बोले - 'अब बड़ी जल्दी इक्का आ गया। जाओ, मैं नहीं जाता, ये तुम्हारी शरारत समझ गया हूं।' मैंने इक्का ले जाने को कहा और आर्य भाई घबराये की अब शास्त्रार्थ में पंडित लेखरामजी खड़े होकर कहीं काम न बिगाड़े। जब शास्त्रार्थ के मैदान में आये और

मैंने पंडित लेखराम को कुर्सी पर बैठने को कहा तो उनमें विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया। ऐसा ज्ञात होता था कि सारे शास्त्रार्थ का उत्तरदातृत्व उन्हीं पर है और यह उनका कर्त्तव्य है कि सबसे योग्य आदमी को शास्त्रार्थ के आसन पर बैठायें। मुझे कहा - 'लालजी ! बैठिये, शास्त्रार्थ आप करेंगे।' मैंने कहा कि पंडित लेखराम की उपस्थिति में मैं कैसे बैठ सकता हूं। उत्तर बड़े प्रेम और आग्रह पूर्वक था। मुसकरा कर बोले - 'यह बात अब जाने दीजिए, यह आपका ही काम है। यदि बैठ गया तो शास्त्रार्थ की रिपोर्ट कौन लिखेगा।' यह कहा और मुझे पड़कर कुर्सी पर बैठा दिया।

यह आचरण का परस्पर विरोध सबकी समझ में न आयेगा, परन्तु बुद्धिमान पाठक इसके रहस्य को समझ जायेंगे।

१२ सितम्बर को मुकेरियां से चलकर दिन-रात यात्रा करते हुए हम दोनों १३ को प्रातः जगराओं के वार्षिकोत्सव में जाकर सम्मिलित हुए। जो रहतिये पीछे से शुद्ध होकर आर्य समाज में सम्मिलित हुए थे वे पहले इसी स्थान में पंडित लेखराम जी को मिले थे।

जगराओं में फिर नियत घटना आकर उपस्थित हुई। वहां के पौराणिकों ने स्वयं आर्य समाज का सामना करने की शक्ति न देखते हुए मुसलानों को मुबाहसे के लिए खड़ा किया। तहसीलदर भी मुसलमान था, इसलिए उन्हें विजय की बड़ी आशा थी। मैं जब उत्सव समाप्त करके लौटने लगा तो कुछ आर्य भाइयों ने वहां भी मेरी मिन्नत की कि मैं आर्य पथिक को साथ ही ले जाऊं। मैंने मालेरकोटले की व्यथा याद करके ऐसा करने से इन्कार कर दिया। शहर में धूम मच गई कि आर्यों को और विशेषतः लेखराम को, कष्ट दिया जायेगा। परन्तु सिंह से समीप जाना बड़ा कठिन था विरोधियों की पोल खोलने से पहले आर्य पथिक लेखराम जगराओं से न हिले।

२६, २७ सितम्बर को, पंडित लेखराम झङ्ग आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में व्याख्यान देते तथा शङ्का समाधान करते रहे।

नवम्बर के अन्त में लाहौर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में सम्मिलित होकर व्याख्यान दिये और उसके पश्चात् फिर २७ दिसम्बर १८९६ के दिन जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर पहुंचे। इन दोनों महीनों लाहौर रहकर जीवन चरित्र की तैयारी और छपाई का काम निर्विघ्नता से होता रहा और अपनी माता तथा धर्मपत्नी को भी आर्य पथिक ने लाहौर में ही टिका दिया। जालन्धर आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर व्याख्यान देकर पंडित लेखराम मेरे साथ ही लुधियाना आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर गये। उस स्थान की एक घटना वर्णनीय है जिससे पता लगता है कि प्रतिज्ञा पालन का भाव आर्य पथिक को कैसा दृढ़संकल्प बनाये हुए था।

लुधियाना आर्य समाज के वार्षिकोत्सव पर अन्तिम दिवस पंडित लेखराम

का व्याख्यान नियत था। उससे पहले मैंने वेद प्रचार निधि के लिए अपील की थी और जब धन एकत्रित हो चुका तो पंडित लेखराम व्याख्यान के लिए खड़े हुए। ११ माघ, संवत् १९५३ सद्धर्म प्रचारक में लिखा है - 'अभी व्याख्यान आरम्भ नहीं किया था कि पंडित जी की प्रकृति कुछ रूग्ण हो गई। (पेट में दर्द होने लगा था) जिस कारण वह अपना व्याख्यान न दे सके। उनके स्थान में मुंशीराम जी ने धर्म विषय पर.....व्याख्यान दिया.....उनके पश्चात् पंडित जी की प्रकृति कुछ ठीक हो गई और उनका व्याख्यान आरम्भ हुआ।.....जनोपस्थिति १२०० के लगभग थी।' २९ दिसम्बर को रात को लुधियाना आर्य समाज का उत्सव समाप्त हुआ और ३१ की शाम को पंडित लेखराम रेल और टट्टू की यात्रा करते हुए शकरपुर आर्य समाज में पहुंचे और १ जनवरी १८९६ के दिन धर्म चर्चा में पूरा भाग लेने के अतिरिक्त एक पतित की शुद्धि की और अपने प्रभावशाली व्याख्यान के साथ वार्षिकोत्सव को समाप्त किया। शरकपुर से लौटकर फिर पंडित लेखराम के भागोवाला (जिला गुरुदासपुर) आर्य समाज के उत्सव में भी सम्मिलित होने का पता लगता है जो १७ और १८ जनवरी को हुआ। उत्सव में पंडित लेखराम जी ने दो व्याख्यान दिये और उत्सव के पश्चात् तक ठहर कर चौधरी फतेहसिंह के लड़के का नामकरण संस्कार कराया तथा आर्य समाज के कुछ नये सभासद बनाये। यह सब तो किया परन्तु मुझे जिस दृश्य में अधिक आनन्द आया वह उत्सव के समय शास्त्रार्थ था।

सायंकाल अपना व्याख्यान समाप्त करके मैं सन्ध्या वन्दन के लिए चला गया। फिर भोजन करके बैठा था तब पता लगा कि एक मुसलमान ग्रेजुएट के साथ पंडित लेखराम का शास्त्रार्थ हो रहा है। कम्बल ओढ़ कर मैं शास्त्रार्थ का आनन्द लेने चल दिया। जनोपस्थिति अढ़ाई हजार से कम न होगी। आस-पास के ग्राम स्त्री-पुरुषों से खाली हो गये थे। इनमें दो सहस्र तो जाट थे और शेष ब्राह्मण, खत्री मुसलमानादि। एक तुर्की टोपी वाला एक ओर और आर्य मुसाफिर दूसरी ओर बैठे है। प्रश्नकर्त्ता 'तुर्की टोपी' थे और उत्तरदाता पंडित लेखराम मेरे आने से पहले यह प्रतिज्ञा स्थापन कर चुके थे कि उत्तर में दुर्जन-तोष न्याय के अनुसार जो कुछ वह कहेंगे उसके लिए कुरान या हदीस मूल का प्रमाण देंगे और पूछा था कि क्या महम्मदी प्रश्नकर्त्ता भी ऐसी प्रतिज्ञा करने को तैयार हैं। तुर्की टोपी उत्तर दे चुकी थी कि वह भी मूल वेद का ही प्रमाण देंगे। महम्मदी ग्रेजुएट ने प्रश्न नियोग विषय पर कर छोड़ा था और जब मैं पहुंचा तो एक पुस्तक हाथ में लिए उसमें कुछ पढ़ रहा था। मेरे सामने निम्नलिखित नाटक हुआ।

महम्मदी 'देखिये हवाला रगवेद, मन्दिल.....सोकत'

आर्य पथिक - 'शुद्ध उच्चारण तक नहीं कर सकते हो और वेददानी का दावा है। बस तुम निग्रह स्थान में आ गये। या तो दावा छोड़ो या हार मानो।'

महम्मदी - 'अजी हम वेद जानें या न जानें, एतराज तो ठीक है।'

आर्य पथिक - 'पहले कहो - मैंने झूठ बोला कि मैं मूल-वेद जानता हूं और झख-मारी - यह कहो तब मुबाहसा आगे चलेगा ।'

मुहम्मदी ग्रेजुएट ने बहुत हेरा - फेरी की परन्तु अन्त में उसको कहना पड़ा - 'अच्छा मैंने गलत कहा था कि मैं मूल-वेद में हवाले दूंगा-अब मेरे सवाल का जवाब दीजिए ।'

आर्य पथिक - 'आये अब राह-ए-रास्त (सीधे मार्ग) पर हां, अब जवाब देता हूं ।'

मेरे पास दस बीस पढ़े-लिखे मुसलमान और दो तीन मौलवी खड़े थे, सब बोल उठे - 'सुबहानअल्ला ! क्या ताकस मुनाजरा है ! शेर के पंजे में फंसा हुआ है ।'

पंडित लेखराम ने न केवल वैदिक नियोग का ही भली प्रकार मंडन किया प्रत्युत मुसलमानों के मुता के मसले को भी पेश किया । इस पर मुहम्मदी ग्रेजुएट ने कहा - 'सिर्फ कुरान का आयत पढ़ देने से काम न चलेगा । किसी मुस्तनिद तफसीर (प्रामाणिक भाष्य) का हवाला भी देना होगा ।'

आर्य पथिक - 'अच्छा बतलाओ तुम किस तफसीर को मुस्तनिद मानते हो ?'

महम्मदी ग्रेजुएट ने जिस तफसीर का नाम लिया वही पंडित लेखराम के हाथ में थी, उन्होंने उसमें से पढ़कर सुना दिया । मालूम होता है कि तुर्की टोपी ने कभी कोई तफसीर पढ़ी न थी, पंडित लेखराम से किताब खुद पढ़ने को मांगी । यहां पंडित लेखराम की हाजिर जवाबी काम आई । महम्मदी ग्रेजुएट मुबाहसे में एक स्थान में कह चुका था कि 'खुदा को बीच में क्यों घसीटते हो, लाजमी है कि खुदा को मानकर ही मुबाहसा चले ? इसी का सहारा लेकर और सामने खड़े एक वृद्ध मौलवी साहेब को सम्बोधन करके आर्य पथिक ने कहा -

मौलवी साहेब ! आप तशरीफ लाकर हाजरीन को पढ़ सुनाइए कि कुरान शरीफ की तफसीर में क्या लिखा है । इस दहरिये (नास्तिक) के हाथ में मै कुरान शरीफ न दूंगा ।'

मौलवी साहेब को कोई आकर्षण शक्ति वेदी पर खींच ले गयी और उन्होंने तफसीर के शब्द ज्यों के त्यों पढ़कर अपनी ओर से यह भी कह दिया - 'कौन कहता है कि कलाम मजीद में मुताका हुक्म नहीं है !'

सभा मंडप करतालिका ध्वनि से गूंज उठा और सभा विसर्जन हुई ।

इसके पश्चात् पंडित लेखराम जमकर लाहौर में ही जीवन चरित्र का काम करते रहे और उनके कही बाहर प्रचार के लिए जाने का पता नहीं लगता । मैंने भी उनका यह अन्तिम व्याख्यान सुना, इसके पश्चात् पंडित लेखराम का सबसे अन्तिम प्रचार मुलतान नगर में हुआ जिसका हाल उनके पत्र से ज्ञात होता है तो उन्होंने ४ मार्च को १ बजे रात्रि के समय, मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा था- 'मेरे यहां ४ व्याख्यान हुए, खूब रौनक रही । मेरे सक्खर आने के लिए यहां के

समाज की सम्मति नहीं है, क्योंकि वहां क्वारन्टी बीमारी का लगा हुआ है। मुझे आग्रह पूर्वक उन्होंने रोक लिया है और आपको तार दे दी है मुजफ्फरगढ़ में दूसरा समाज होने की शङ्का है इसलिए आज रात को वहां जाता हूं।'

पाठक वृन्द ! आपने आर्य पथिक के जीवन के साथ-साथ इतनी यात्रा की, आपका उत्साह बढ़ता गया और इस पवित्र जीव के साथ प्रेम की वृद्धि होती गई। क्या आप अकस्मात् इस जीवन की श्रृंखला को टूटते देखकर दुःखित न होंगे ? मैं भी उसी प्रकार दुःखित हूं और चाहता नहीं कि उसका वर्णन शीघ्र समाप्त हो। परन्तु काल की गति के आगे किसका वश चला है। फिर भी मुलतान के अन्तिम प्रचार को विस्तृत करके शिर आई हुई आपत्ति को कुछ काल के लिए टालना चाहता हूं।

मुलतान में कालिज दल वालों की ओर से दूसरा आर्य समाज खुला हुआ था। उन्होंने आर्य प्रतिनिधि सभा के काम के विषय में कुछ भ्रम फैलाये थे। जिन्हें दूर करने के लिए पंडित लेखराम गये थे ! पंडित लेखराम जी के मुकाबिले में उन लोगों ने भी व्याख्यान कराये जिनसे पंडित लेखराम को अपशब्द ही न कहे गये प्रत्युत सिक्खों को भड़काने के लिए उन्हें गुरु निन्दक बतलाया गया। ऐसी अवस्था हो चुकी थी जब ४ मार्च को पंडित लेखराम का इस जीवन में अन्तिम व्याख्यान हुआ। इसका आंखों देखा हाल एक सभ्य पुरुष ने, १४ वर्ष हुए, मुझे लिखकर भेजा था जिसे यहां उद्धृत करता हूं -

'पंडित (लेखराम) जी के व्याख्यान कुम्भवङ्करी - गीरां और समाज मन्दिर में होते रहे। मैंने जाकर मुसलमानों से कहा कि उनसे मुबाहसा कर लो। वे कहने लगे कि यह बड़ा आलिम है हम उसकी बराबरी नहीं कर सकते।....एक दिन पंडित जी ने लाला (क) काशीराम वकील को जो उस समय कल्चर्ड समाज के प्रधान थे, और चेतनानन्द जी (वकील) को समाज मन्दिर में बुलवाया और उनसे कहा - 'देखो मिर्जा ने कैसी सख्त किताब लिखी है जो कि अनजानों को भ्रम में डाल सकती है। इसका उत्तर अवश्य देना चाहिए। आप लोग निरे लड़ाई झगड़ों में पड़े हुए हो।' बहुत सी बातचीत हुई परन्तु कुछ परिणाम न निकला, बल्कि उसी दिन उन लोगों ने भाई जगतसिंह का व्याख्यान कुम्भकङ्करीरोगां में कराया। वहां खालसों की उपस्थिति खासी थी जिसमें लाला काशीराम और लाला चेतनानन्द ने स्वयं कहा कि पंडित लेखराम कहता है कि गुरु नानक मुसलमान था इसलिए उसका समाज से कोई संबंध नहीं। मैं कुछ भाइयों समेत पंडित जी के दर्शन को गया और व्याख्यान का सारा हाल उन्हें सुनाया। कुछ देर सोचने के पश्चात् बातचीत करते हुए पंडित जी के मुंह से निकला 'कौन कहता है कि गुरु नानक मुसलमान थे ?' चलो कल यहीं व्याख्यान होगा।'

'नोटिस रात को ही लिखे गये। दूसरे दिन ४ बजे मध्याह्नोत्तर में समाज मन्दिर में गया। कई भाइयों के प्रश्नों के उत्तर देते रहे। फिर अजवाइन मंगाई

और साफ करके पानी के साथ खाली और कहा - रेल में यही मेरा जीवन है, यह बड़ी उत्तम औषधि है ।' सात बजते ही पंडित जी मैदान में पहुंचे । हम लोग भजन गाते थे और पंडित जी पेन्सिल से व्याख्यान के लिए नोट लिख रहे थे । सिक्ख भड़काये हुए बड़े जोश से लाठियां लिए जमा थे । व्याख्यान आरम्भ हुआ । आर्यावर्त की अवनति के आरम्भ काल से वक्तृता को उठाकर परस्पर के द्वेष के बीज का खोज लगाते हुए बतलाया कि थोड़े से स्वार्थ ने आर्यावर्त का नाश कर दिया है । आपने बतलाया है कि महमूद और अलाउद्दीन के विजय का साधक तुच्छ जीवों का स्वार्थ ही था । बहुत से दृष्टान्तों के पश्चात् आपने विष्णु बाबा, मुंशी इन्द्रमणि और स्वामी दयानन्द की हिम्मत का वर्णन किया जिन्होंने विरोधी आक्रमणों से आर्य जाति को बचाने का प्रयत्न किया । इसके पश्चात् अपने विषय को लेकर मिर्जागुलाम अहमद की 'सतवचन' पुस्तक में से गुरु नानक के मुसलमान होने के विषय में लेख पढ़कर चारों ओर देख पूछा - 'यदि कोई खालसा बहादुर विद्यमान है तो इसका जवाब दे ।' फिर लाला काशीरामदि के उत्तर में 'ग्रंथी फोबिया' पुस्तक पेश करके पूछा कि जिन कल्चर्ड साहेबान ने गुरु नानक के विरुद्ध ऐसी पुस्तक छपवाई, क्या वे अब गुरु नानक के पवित्र आचरण पर लगाये कलङ्क को दूर कर सकते हैं ?' फिर बड़े प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से सिद्ध किया कि गुरु नानक मुसलामान न थे ।

व्याख्यान की समाप्ति पर लाला चेतनानन्द जी के मुंशी ने विघ्न डालने की नीयत से कहा - 'पंडित (लेखराम) जी ने (अपने व्याख्यान में) गुरु नानक को हिन्दू तो कहीं नहीं कहा' इस कुटिल नीति को भी पंडित लेखराम की हाजिर जवाबी ने परास्त कर दिया । आर्य पथिक बोले -

'देखो बाबा नानक देव स्वयं क्या कहते है -

हिन्दू अन्हा (अन्धा तुर्को काणा ।
दोहां विच्चों ज्ञानी स्याणा ।

बाबा नानक जी ज्ञानी अर्थात् आर्य थे, गुलाम हिन्दू न थे ।

हमारे चरित्र नायक के जीवन की रङ्ग-भूमि में अन्तिम जवनिका उठने वाली है । वह अन्तिम दृश्य बड़ा ही मर्म-भेदक, गम्भीर और पवित्र है जो अपने स्थिर संस्कार आर्य जनता पर छोड़ा गया है । उसकी अन्तिम जवनिका के गिरने के पश्चात् कुछ लिखना पाठकों के उच्च आदर्श की ओर उठे हुए हृदयों को फिर से भूमितल पर पटकने के सदृश होगा, इसलिए आइये ! इस जीवन पर एक व्यापक दृष्टि पहले से ही डाला जाये ।

क-(आर्य्य-पथिक की मृत्यु के पश्चात् यह फिर वेद-प्रचार-दल के समाज के प्रधान हो गये थे ।

# चरित्र सङ्गठन

बचपन से ही लेखराम पर ब्राह्मणत्व के संस्कार पड़ रहे थे। यद्यपि वर्ण विचार से जन्म क्षत्रिय गृह में हुआ था तथापि लेखराम के पूर्व जन्म के प्रबल संस्कार, विरुद्ध वायु-मंडल में भी, उन्हें ब्राह्मणतत्व के सांचे में ढाल रहे थे। उनका

**त्याग का सरल जीवन**

निस्सन्देह साक्षी दे रहा था कि पुलिस के बदनाम महकमे के अन्दर भी सावधान रहकर यह एक दिन इन्द्रियों के दासत्व की बेड़ी को काट डालेगे। तम्बाकू की तो बचपन में ही बैतुलबाजी से जड़ काट डाली थी। मांस, मद्य तथा अन्य मादक द्रव्यों के कभी समीप नहीं गये। पाप रूपी दूषण तो एक ओर रहे किसी व्यसन को भी जीते जी समीप नहीं आने दिया। और तो और, पान भी कभी नहीं खाया। कपड़ों के बनाव-चुनाव को वह जनानापन के नाम से पुकारते थे। स्वास्थ्य अत्युत्तम रहता था, इसलिए पोशाक से शोभा बढ़ाने की उन्हें आवश्यकता न थी। कैसे भी कपड़े किसी ढङ्ग से पहन लें, उनके शरीर पर स्वयं शोभा पा जाते थे। जब तक अत्यन्त आवश्यकता न होती तब तक दरमियाने दरजे में भी यात्रा न करते। और जो व्यय करते वहीं सभा से लेते। जहां अन्य उपदेशक पूरे इक्के का किराया १) लगाते वहां आर्य पथिक के बिलों में उसी स्थान का किराया साढ़े तीन आने दर्ज होता। जहां कुली से असबाब उठवा कर ले जाने में बचत होती वहां इक्का गाड़ी पर नहीं बैठते थे। और यदि यात्रा में कहीं उतरने से अपना काम भी होता तो वहां किराया सभा से न लेते। दृष्टान्त के लिए केवल एक बार पत्र का पेश करना काफी होगा। सभा के मंत्री जी ने १५ फरवरी १८९६ को लिखा - 'मान्यवर पंडित जी नमस्ते। आपके ९-१-९६ के बिल में जो ७ दिसम्बर को लाहौर तक का किराया रेल और विविध लिखा है उसमें 'विविध' से क्या तात्पर्य है तथा आपने २३ दिसम्बर १८९५ सहाले से लाहौर तक किराया २॥) लिखा है, परन्तु लाहौर से सहाले तक का किराया आपने नहीं लिखा, इसका क्या कारण है ? यदि भूल हो गई हो तो सूचित कीजिए कि बिल में दर्ज कर दिया जावे।'

इसके उत्तर में पंडित लेखराम ने लिखा - 'विविध से तात्पर्य है, किराया, मजदूर का जो स्टेशन तक दिया गया है। और लाहौर से सहाले तक का

किराया मैंने जानबूझ कर नहीं लिखा क्योंकि वह आधा कुछ मेरा निज का काम था और ऐसा किराया मैं वसूल नहीं कियाकरता ।'

सत्व-गुणी ब्राह्मण मैं लेखराम को इसीलिए कहता हूं ।

## सच्चाई और सदाचार की मूर्ति

ऊपर वर्णन की हुई कहानी में आर्य पथिक की सत्य-परायणता के बहुत से प्रमाण मिलते है । साधारण मामलों में तो मैंने प्रायः अच्छे उपदेशकों को सत्यवादी पाया है, परन्तु आर्य सिद्धान्तों के मामले में ऐसे उच्चकोटि के उपदेशक भी गिर जाते है और स्वयं जिस सिद्धान्त पर सन्देह हो उसको भी सिद्ध करने खड़े हो जाते है । पंडित लेखराम का व्यवहार इससे सर्वथा विरुद्ध था । जब तक नियोग समझ में नहीं आया था तब तक खुली सम्मति देते थे और तब द्विजों के लिए नियोग की आज्ञा समझ ली तो उसकी पुष्टि में पुस्तक लिख दी । कौन नहीं जानता कि पंडित लेखराम का अन्दर बाहर एक सा था ।

सत्य-परायणता के साथ सदाचार का तो गाढ़ा संबंध है ही । न केवल यही कि पंडित लेखराम ३५ वर्ष की आयु तक पूर्ण ब्रह्मचारी रहे प्रत्युत मैं जानता हूं कि गृहस्थाश्रम में भी ऋतुगामी रहते हुए ब्रह्मचारी ही थे । सदाचार से उनको बड़ा प्रेम था ।

जिस प्रकार सदाचार के साथ उन्हें बड़ा प्रेम था उसी तीक्ष्णता से वह दुराचार से अत्यन्त घृणा का भाव प्रकट करने से नहीं रुकते थे । यद्यपि महात्माओं के लिए महामुनि पतंजलि ने पाप के लिए उपेक्षा की वृत्ति धारण करने का उपदेश दिया है, परन्तु यह गुण पूर्ण योगी जनो में ही पूर्ण रूप से स्थिर होता है । पंडित लेखराम जैसे मध्यम श्रेणी के धार्मिक वीरों में से थे वैसे क्षात्रधर्म मिश्रित गुण भी उनमें प्रवेश किये हुए थे । धर्म की आड़ में अधर्म होता देखकर वह डांट बताये बिना रह नहीं सकते थे और आर्य समाज के सभासदों को गिरे हुए देखकर तो उन्हें बहुत शोक हुआ करता था । इस संबंध में मैं उनकी नोटबुक से कुछ लेख उद्धृत करता हूं ।

सं० १८९१ ई० के जनवरी मास में पंडित लेखराम ऋषि दयानन्द के जीवन वृत्तान्त का मसाला इकट्ठा करते हुए दानापुर (बिहार प्रान्त) आर्य समाज में पहुंचे । यहां के विषय मैं उनकी गुप्त नोटबुक में दर्ज है- 'दानापुर समाज का एक अफसोसनाक हाल - २७-२८ जनवरी १८९१ ई० (१) वहां के तमाम मेम्बर बिरादरी के डर से श्राद्ध करते हैं । एक नामी मेम्बर आर्य समाज के घर में उसके लड़के की शादी है । उसने २७ जनवरी की रात को एक कत्थक का नाच कराया जिसमे चन्द मुअज्जिस मेम्बर आर्य समाज गये । भूतपूर्व मंत्री - उपप्रधान, आदि - और आज २८ जनवरी बुद्धवार को उसके यहां रण्डी का नाच है । मुझे अफसोस से मालूम हुआ कि एक मेम्बर ने आर्य

समाज के मन्दिर में आकर लोगों को यह न्योता दिया कि आज भी तुम चलना।

'बिरादरी का जोर तोड़ने के वास्ते मेम्बर लोग बिल्कुल कोशिश नहीं करते। वैसे हालत समाज की अच्छी है। मकान भी अपना जरखरीद है, एक स्कूल भी जारी है, स्कूल के हेडमास्टर समाज के प्रधान है, तादाद भी एक माकूल है, हाजिरी भी माकूल होती है, २५ मेम्बर सन्ध्या करने वाले भी है, कुछ हवन करने वाले भी है, लाइब्रेरी भी खासी - लेकिन बेसूद ! (व्यय)।'

इसमें सन्देह नहीं कि दुराचार से आर्य पथिक को बड़ी घृणा थी परन्तु इसलिए दुराचारी पुरुष को त्याग कर उसे उसके भाग्य पर छोड़ देना वह अनार्यपन समझते थे। जब किसी आर्य समाज में जाकर किसी काम करने वाले को अनुपस्थिति पाते और सामाजिक सभासदों से उस पर दुराचार का आक्षेप सुनते तो सैर को चलते हुए उसके यहां पहुंच जाते और उसे साथ ले समझाकर गिरते-गिरते उसे बचा लेते। ऐसी कई आप बीती घटनाएं लोगों को याद होंगी। यही कारण था कि तद्यपि मुहम्मदी मत को सबसे बढ़कर दुराचार की शिक्षा रूपी विष फैलाने का साधन समझ कर उसकी जड़ उखाड़ने को उद्यत रहते थे परन्तु महम्मदी जिज्ञासुओं के साथ जो उनको प्रेम था वह उनके मित्र भली प्रकार जानते हैं और इसी प्रेम ने अन्त को उन्हें एक महम्मदी राक्षस की छुरी का शिकार बनाया।

यह प्रसिद्ध है कि साधारण सच्चे आदमी प्रायः क्रोधी अधिक होते है।

**हठ और क्रोध**

हठ और क्रोध की मात्रा पंडित लेखराम में भी अधिक थी। यों तो थोड़े ही सच्चे आदमी ऐसे देखने मे आते हैं जिनमें हठ और क्रोध का अभाव हो, किन्तु जिन धर्म सेवकों की दिन-रात मूढ़ता, कुटिलता और अधर्म के साथ युद्ध करना पड़ता है उनकी हठ और क्रोध की मात्रा रुद्र रूप धारण कर लेती है। यह सौभाग्य शताब्दियों के पश्चात् किसी योगी संशोधक को प्राप्त होता है कि वह अधर्म के लिए रुद्ररूप धारण करते हुए भी क्रोध और हठ को वश में रख सके। पंडित लेखराम योगी न थे और न ही धर्म के प्रवर्तकों में से एक थे. इसीलिए उनमें हठ और क्रोध रूपी दोनों निर्बलतायें थीं। किन्तु हम उनके जीवन के वृत्तान्त में यह कहीं नहीं पाते कि उस हठ या क्रोध से किसी को कुछ हानि पहुंची हो।

एक बार अजमेर के आर्य समाज मन्दिर में डेरा लगाने के पश्चात् कुछ लिख रहे थे। बाबू रामविलास सारडाजी (जो वैदिक यंत्रालय के अजमेर पहुंचने के दिन से ही उसके संरक्षक रहे है) ने पूछा कि महाराज क्या लिख रहे हो ?

उत्तर मिला - 'वैदिक प्रेस वालों की जरा सी बेपरवाई से हमारे सिर पर आफत आ जाती है और विरोधियों को उत्तर देते-देते थक जाते है।

देखो इस पत्थर पूजक ने एक पुस्तक लिखी है जिसनें यंत्रालय की लापरवाई से फायदा उठाकर बहुत से ऊटपटांग एतराज किये है । हम किस-किस का उत्तर दे, आप लोग कुछ प्रबन्ध नहीं करते ।' सार्डा जी ने निवेदन किया कि गलतियां पुरानी हैं उनके संशोधन का कुछ तो प्रयत्न हो ही रहा है । इस पर क्रोध में भरकर बोले-'खाक कर रहे हो' और जो ५० या ६० पृष्ठ लिखे हुए थे सब फाड़ डाले । जब सार्डाजी फटे पत्र इकट्ठा करने लगे तो उन्हें भी छीन लिया । सार्डाजी उदास होकर चले आये और दूसरे दिन नियमानुसार पंडित जी को मिलने भी न गये । तब तो हमारे वीर उनके घर जाने को तैयार हो गये । लोगों ने चपरासी दौड़ाया, सार्डा जी ने अपने न आने का कारण बतलाया तो गुलाब की तरह खिल गये और बोले - 'ईश्वर जानता है सार्डा जी, आप आर्य समाज के सच्चे प्रेमी है, मैं उस पत्थर-परस्त का जवाब जरूर लिखूंगा ।' और फिर आपने 'सांच को आंच नहीं' शीर्षक देकर शिवनारायण प्रसाद कायस्थ की पुस्तक का उत्तर लिखा जो 'कुल्लियात आर्य मुसाफिर' के १७४ पृष्ठ से आरम्भ होता है । हठ तो पंडित लेखराम में बहुत था, जिसके दृष्टान्त बचपन से ही मिलते हैं, परन्तु उस हठ का ही परिणाम

**प्रतिज्ञा पालन की धुन**

थी । आर्य पथिक ने एक बार जो मुंह से निकला उसे हठ करके भी निभाने का सदैव प्रयत्न किया । इनके अन्दर जहां धर्म के साथ प्रेम का भाव सर्वसाधारण से कहीं बढ़कर था वहां उनके निभाने के लिए आत्म-समर्पण तथा तप का भी बड़ा उच्च भाव था । इसके उदाहरण जहां बचपन से मिलते हैं, वहां युवावस्था में यह भाव हम यौवन पर चढ़ा हुआ पाते हैं । रिसाला धर्मोपदेशक के लिए एक-दो बार कातिब (कापी नवीस) न मिला । स्वयं अभ्यास करके छापने की स्याही से कापियां लिखीं किन्तु रिसाले को बन्द न होने दिया ।

ज्वर हो, फोड़े निकले हों, चलने के अयोग्य हों, पुत्र की मृत्यु का शोक हो, कोई भी आपत्ति या विपत्ति, उनको अपने कर्तव्य पालन से नहीं रोक सकतीऊ। उनकी दो काल की सन्ध्या के अटूट नियम की साक्षी में मेरे पास सैकड़ों पत्र पहुंचे है । जब मेरे साथ शिक्रम की सवारी में लुधियाने से जगराओं जा रहे थे तो मार्ग में पानी लेकर शौच के लिए गये । लौटने पर पता लगा कि हाथ - पैर धोने और कुल्ला करने के लिए पानी नहीं है । मैं नीचे था और पंडित लेखराम ऊपर की छत पर थे । मार्ग में कुछ पूछने को आवाज दी, उत्तर कुछ न मिला । देखा तो आर्य पथिक सन्ध्या कर रहे हैं । जब दूसरी चौकी पर शिक्रम पहुंची तो एक भाई ने पूछा - 'पंडित जी ! क्या गेशावरी सन्ध्या हो चुकी ।' पंडित लेखराम ने गम्भीर स्वर में उत्तर दिया - तुम पोप बिना पानी मिले ब्रह्मयज्ञ नहीं कर सकते । भोले भाई ! स्नान धर्म है, हुआ या

न हुआ, परन्तु सन्ध्या धर्म है और उसका न करना पाप है ।

प्रतिज्ञा पालन में ऐसी दृढ़ता का ही परिणाम था कि धर्मवीर वहां कई प्रकार की दृढ़ताओं को पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ देखते हैं । आत्म-सम्मान और निर्भयता के लिए मान इनके मन में वर्तमान सांसारिक सीमा से भी बढ़ा हुआ था । बचपन में ही जब मदरसे में प्यास लगी तो मदरसे का घड़ा भ्रष्ट देखकर मौलवी से प्यास बुझाने के लिए घर जाने की आज्ञा मांगी । मौलवी साहेब ने फरमाया - 'यहीं पीलो छुट्टी नहीं मिल सकती' हमारे आत्म सम्मानी चरित्र नायक ने न तो फिर मौलवी से ही गिड़गिड़ा कर पूछा और नहीं भ्रष्ट घड़े से पानी पिया, सायंकाल तक प्यासे ही बिता दिया ।

एक विश्वास पात्र महाशय से पता लगा कि पंडित लेखराम मिडिल की परीक्षा में शामिल हुए थे । भारतवर्ष के इतिहास संबंधी प्रश्न के उत्तर सरकारी किताबों के अनुसार देने की जगह आपने उनका खण्डन आरम्भ कर दिया । जहां अन्य विषयों में बहुत ऊंचे अङ्क प्राप्त किये वहां इतिहास में शून्य प्राप्त किया । किन्तु उसी इतिहास में अनुतीर्ण लेखराम को पांच वर्षों के पश्चात् पेशावर प्रान्त के हाकिमों ने जिले का इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक मसाला जमा करने के काम पर लगाया था । उनके लिए धर्म धर्म था और अधर्म अधर्म । वह नहीं समझ सकते थे कि आग और पानी का कैसे मेल हो सकता है । यह भाव कभी-कभी व्यर्थ छिद्रान्वेषण की अवस्था तक पहुंच जाता था और उससे यह उपदेश के काम को (बाह्य दृष्टि से) हानि भी पहुंच जाती थी, परन्तु लेखराम अपने स्वभाव को इन छोटी हानियों के लिए बदल नहीं सकते थे । बहुत से धर्मात्माओं की सम्मति है कि अपने मन्तव्यों तथा धर्म के नियमों से न गिर कर भी राजीनामा हो सकता है, परन्तु यदि यह हठ का भाव एक निर्बलता है तो हम उसे लेखराम के आचरण में छिपाना नहीं चाहते ।

परन्तु इस निर्बलता का ही परिणाम था कि हम लेखराम में अवलोकन करते है -

**अभय पद का आदर्श**

आर्य पुरुष प्रत्येक यज्ञ की समाप्ति पर प्रार्थना करते हैं-

**अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथवी उभे इमे ।**
**अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तराद्धरादभयं नो अस्तु ।।**
**अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात् ।**
**अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु ।।** अथर्व० का १९ सू० १५ । म० ५।६

पंडित लेखराम ने केवल इन मंत्रों का पाठ ही नहीं करते थे, वह इन मंत्रों में बतलाई हुई अवस्था को प्राप्त करने का प्रयत्न भी करते थे । उनके

जीवन में ऐसी घटनाएं बहुत सी मिलती हैं जिनका वर्णन कायर हृदयों के अन्दर वीरता का संचार कर देता है ।

बन्नू में जब १८९४ में पहुंचे तो सभासद आपस में इस विषय पर कानाफूसी करने लगे कि जाहिल मुसलमानों के बेजा जोश से रक्षा के लिए पुलिस का प्रबंध करना चाहिए । पं- जी ने यह सुनकर मंत्री को कहा- 'अगर मैं मुसलमानों से डरूं तो घर क्यों न बैठ रहूं, प्रचार के लिए बाहर क्यों निकलूं । पुलिस की कुछ जरूरत नहीं है ।'

मालेरकोटला, जगराओं शिमला आदि की घटनाएं अभी सैकड़ों आर्यों को नहीं भूली होंगी । धर्म वीर सचमुच अपनी जान हथेली पर लिए फिरते थे । इसीलिए तो आर्य जाति के कई भूषणों ने उनका नाम आर्य समाज के अली रक्खा हुआ था और यह नाम सार्थक भी था क्योंकि मुसलमानों का खण्डन करते-करते स्वयं भी कुछ 'जिहादी' भाव प्रवेश कर गये थे ।

वेद में लिखा है 'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत्' कि मनुष्य सृष्टि में ब्राह्मण शरीर के मुख भाग को तुल्य है । जैसे मुख में पांचों ज्ञानेन्द्रिय है और कर्मेन्द्रिय केवल वाणी है, इसी प्रकार ब्राह्मण का लक्षण यह है कि दिन-रात ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहे और जैसा ज्ञान प्राप्त हो उसका यथावत् प्रचार कर दे । मुख में जो भोजन डाला जाये उसे पचने के योग्य बनाकर शरीर के शेष भाग मे बांट देता है, अपने लिए कुछ नहीं रखता । इसी प्रकार ब्राह्मण का धर्म है कि जहां अन्य वर्णों को शुद्ध आजीविका के साधन बतलाये वहां स्वयं अर्थ संचय में न फंसे । मैं दिखला चुका हूं कि ब्राह्मण के अन्तिम लक्षण का तो लेखराम स्वरूप ही थे, परन्तु अन्य लक्षण भी उनमें भली प्रकार घटते हैं । ज्ञान प्राप्ति के लिए उन्हें स्नेह था ।

### तत्वान्दोलन में अनुराग

पंडित लेखराम यद्यपि इङ्गलिश भाषा से सर्वथा शून्य थे और संस्कृत भी साधारण ही जानते थे, तथापि उद्यमशीलता तथा धैर्य की सहायता से इन भाषाओं में लिखे हुए ग्रंथों में से भी ऐसी विचित्र (अपने मतलब की) बात निकाल लाते थे जिनका उन भाषाओं के जानने वालों को स्वप्न भी न था । यही कारण था कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब तथा सजीव आर्य समाजों के अधिकारियों पर जब कभी वैदिक धर्म के सिद्धान्तों के विषय में बाहिर से प्रश्न होते तो वे उन प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करने के लिए, पंडित लेखराम के पास ही भेजा करते । मुझे इस प्रकार का बहुत सा पत्र व्यवहार मिला है जिसमें न केवल महम्मदी तथा ईसाई मत के अनुयायियों के प्रश्नों के उत्तर के लिए ही पंडित जी को प्रेरित किया गया है प्रत्युत ऐसे प्रश्न भी उनके पास आन्दोलनार्थ भेजे गये है जिनका संबंध संस्कृत के गूढ़ ग्रंथों तथा अंग्रेजी के अनात्मवाद

(Materialism) के साथ था। ऐसे प्रश्न पत्रों में मुझे दो पत्र बालमुकुन्द आर्य के उर्दू भाषा में लिखे हुए मिले। जो उक्त महाशय ने रावलपिंडी से आषाढ़ तथा कार्तिक सं० १९४० में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम भेजे थे। इन पत्रों से विदित होता है कि उन दिनों भी बहुत से आर्य समाजी बिरादरी मुकाबिले की शक्ति न रखते हुए ऋषि दयानन्द के ग्रंथों से ही जन्म को वर्ण व्यवस्था का निर्णायक सिद्ध करने के प्रयत्न किया करते थे और ऐसा करने के लिए आजकल के थियासिफिस्टों (Theosophists) से भी बढ़कर दयानन्द के शब्दों की खींच तान किया करते थे।

अंग्रेजी ग्रंथों से प्रमाण ढूढ़ने की इन्होंने विचित्र विधि निकाली। जब किसी ऐसे अंग्रेजी पढ़े के यहां जाते जिन्हें ग्रन्थावलोकन में अनुराग दिखाई देता तो पंडित जी का पहिला प्रश्न उससे यह होता - 'सुनाइये कोई नयी किताब पढ़ी।' यदि उसने किसी नयी किताब का नाम बतलाया तो जब तक उससे उस पुस्तक के सारे विषय न पूछलें उसकी जान न छोड़ते, और जो बात उन्हें अपने मतलब की मालूम होती उसी भद्र पुरुष से अपनी नोटबुक में लिखवा लेते। फिर वह लिखी हुई इबारत दूसरे अंग्रेजीदाओं से पढ़वा और एक दूसरे के लिए अर्थों को आपस में मिलाकर निश्चय करते कि वह प्रमाण किस काम में आ सकेगा। किन्तु उस पहले नोट की यहीं समाप्ति न होती। जिस-जिस नये अंग्रेजीदां से मिलते उसी विषय में उसके विशेष पढ़े-पढ़ाये हुए का स्मरण दिलाकर जितने नये प्रमाण उस विषय पर मिलते उन्हें इकट्ठा करते जाते।

इस संबंध में मुझे एक मनोरंजक वृत्तान्त याद आता है जो स्वर्गवासी धर्मात्मा विश्वासी लब्भूराम बी०ए० ने मुझे सुनाया था। 'मौत के पश्चात् का दिन' (The day after death) नामी लूइसफिग्योर कृत पुस्तक उन्हीं दिनों अधिक प्रसिद्ध हुई थी और पंडित जी अपनी 'मसल-ए-तनासुख' (पुनर्जन्म) नामी पुस्तक के लिए नोट तैयार कर रहे थे। आपने 'फिग्योर' की पुस्तक में से पुनर्जन्म संबंधी एक उदाहरण किसी से नकल कराया हुआ था जो लब्भूराम जी ने साफ अर्थ कर दिये जिससे पंडित जी का पूरा मतलब सिद्ध न हुआ, अर्थात् लुइस फिग्योर उच्चयोनि से नीचे योनि में गिरना नहीं मानता था। पंडित जी बोले - 'भाई जरा संभलकर अर्थ करो। यह अर्थ कैसे हो सकते हैं। मनुष्य से जहां देव योनि में जाना मानता है तो नीच पशु में जाना भी मानता होगा।' लाला लब्भूराम ने फिर वही अर्थ किये जिस पर पंडित जी खिसियाने होकर बोले - खाक अंगरेजी पढ़े हो! आपने बी०ए० की ही मिट्टी खराब की। यह अर्थ कैसे हो सकते हैं। लब्भूराम जी वक्ता थे रसीले, बोले - 'पंडितजी! अर्थ तो वही है जो मैंने किये, मगर आपके डण्डे के डर से आपकी ही सी कह दें।' पंडित जी का गुस्सा हिरण हो गया और मुसकरा कर बोले - ईश्वर जानता

हैं ! लब्भूराम जी आप बड़े होनहार हैं । इन योरोपियनों को अभी पूरी समझ नहीं आई रफतः रफतः (शनैः शनैः) समझ जायेंगे ।'

इसमें सन्देह नहीं कि पंडित लेखराम जिस लक्ष्य (अर्थात् वैदिक धर्म के सिद्धान्तों की पुष्टि) को सामने रखकर आन्दोलन किया करते थे, वह उन्हें किसी - किसी समय अप्रमाणिक बातों के लिए भी प्रमाणों की कमी नहीं छोड़ता था, परन्तु अपनी पुस्तकों में उन्होंने वही प्रमाण लिखे है जिनकी पुष्टि अकाट्य प्रमाणों से हुई । उदाहरण के लिए एक ही दृष्टान्त लीजिए जो पंडित लेखराम की ऐतिहासिक खोज प्रणाली पर प्रकाश डालता है ।

पंडित लेखराम ने दो भागों में 'तारीख-ए-दुनिया' नाम की एक लघु पुस्तक लिखी थी । उसमें विविध संवतों का वर्णन करते हुए उन्होंने आर्य ग्रंथों के लिखे जाने के समय भी निश्चित किये हैं । पुस्तक का आधार उन नोटों पर प्रतीत होता जो उक्त पंडित जी की नोटबुक में मिले हैं । पंडित जी की आन्दोलन प्रणाली यह थी कि पहले प्रतिज्ञा रूप से उस सिद्धान्त को लिख लेते थे जो उन्हें सिद्ध करना अभीष्ट होता, फिर जिन जिनके लिए प्रामाणाधार मिलता उसको रखकर शेष को काट देते । उनके नोटों में पहले वेदों के निर्माण का समय १ अरब ९६ करोड़ ८ लाख ५२ हजार ९ सौ ८९ वर्ष देकर, उपनिषदों का समय इस प्रकार लिखा है -

प्रथम मन्वन्तर - ईशोपनिषिद ।

दूसरा मन्वन्तर - केन ।

तीसरा मन्वन्तर - कठ, प्रश्न ।

चौथी मन्वन्तर - मुण्डक, माण्डूक्य ।

पांचवा मन्वन्तर - ऐतेरेय, तैत्तिरीय ।

छठा मन्वन्तर - बृहदारण्यक, तथा मनु स्मृति का निर्माण समय १,८०००००० वर्ष ।

ऊपर के लेख के लिए जब कोई आधार न मिला तो ऊपर के पांचों मन्वन्तरों को लकीर में घेर कर लिख दिया - 'छठे मन्वन्तर की तसनीफात' और शायद जब इसके लिए भी कोई ऐतिहासिक लेख-बद्ध प्रमाण न मिला तो 'तारीख दुनिया' में उपनिषदों के निर्माण काल पर कोई विस्तृत विचार ही न किया ।

पंडित लेखराम ने एक स्थान में आर्यावर्त्त संबंधी सब इतिहास ग्रंथों की सूची लिखी थी और मेरे साथ मिलकर वह अंगरेजी, आर्य भाषा, उर्दू - तीनों भाषाओं में एक प्रामाणिक भारतवर्ष का इतिहास तैयार करना चाहते थे ।

पं० लेखराम के छोटे नोट विचित्र 'चाउ-चाउ का मुरब्बा' है । कहीं तोपों के निर्माण काल का पता लगाकर उसका रामायण के काल से मुकाबिला; कहीं

'खुदा की हस्ती के सबूत' में नौ प्रबल युक्तियों का खुलासा, कहीं दिल्ली के लाट के वर्णन से आर्यों के शिल्पकारी की प्रशंसा, कहीं कुरान की आयतों की पड़ताल, कहीं समयानुकूल, प्रयोग के लिए उद्धृत कवितायें, कहीं फीरोजशाह के अत्याचारों के प्रमाण की फुलझड़ी, कहीं महम्दियों के ७२ नहीं बल्कि ७८ फिरकों की सूची, कहीं सुकृतपन्थ के फारसी संस्कृत मिश्रित मूल मंत्र, कहीं लाला साईंदास, लाला जीवनदास, लाला रघुनाथ सहाय, मुंशीदुर्गा प्रसाद, मुंशी केवल कृष्ण, थम्मनसिंह ठाकुर, लाला मुल्कराज भल्ला, हकीम बहाउद्दीन इत्यादि के बतलाये नुस्खे सांप के कांटे से लेकर सन्तान उत्पत्ति तक के इलाज के लिए और कहीं वेद शास्त्रों के प्रमाणों की पंजिका - कहां तक लिखें, संसार में ऐसा कोई विषय नहीं जिसकी खोज करना लेखराम के कार्य की सीमा से बाहर समझा जा सकता ।

तारीख दुनिया में वर्तमान सृष्टि की आयु (४,३२,००,००००० ) चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष लिखी है । इनके लिए प्रमाण में अथर्ववेद, प्रपाठक ८, अनुवाक १, मंत्र २१ पंडित लेखराम ने पेश किया है -

शतं तेऽयुतं हायनान्द्वे युगे त्रीणि चत्वारि कृराम ॥

आर्य जनता का प्रायः वह निश्चय है कि पंडित लेखराम वेद तथा अन्य शास्त्रों के प्रमाण औरों से ढुंढ़वाकर लिखा करते थे । यह बात कैसी निर्मूल है, इसको सिद्ध करने के लिए मैं ऊपर लिखित अथर्ववेद के प्रमाण के विषय में श्री पंडित तुलसीराम स्वामी सामवेद भाष्यकार को पत्र देता हूं । उक्त पंडित जी लिखते हैं -

'सं० २१०१, ता० २०-८-१९०० ।'

श्रीमन्महाशय ! नमस्ते । आपके १८-८-१९०० के लेखानुसार यद्यपि पंडित लेखराम बहुत बार मिले परन्तु केवल एक बार की बात जीवन चरित्र मे लिखने योग्य है कि वे अपने विश्वास के ऐसे दृढ़ थे कि सन् ९० (कुम्भ १८९१) के अप्रैल में था) कुम्भ के मेले हरिद्वार पर आवश्यक होने पर मूलवेद को प्रतिज्ञा के साथ खोजने लगे तो एक अथर्व (वेद) का मंत्र तत्काल कल्प वर्ष संख्या परक ढूंढ़ लिया । यद्यपि संस्कृत नहीं जानते थे, (तथापि) वह मंत्र पंडितों से पूछा तो उसका वही तात्पर्य निकला । उपनिषदों को वेद-मूलक ही सिद्ध करने के लिए उन्होंने बड़ा प्रयत्न किया था और उनपनिषदों में जो मूल वेद का भाग है उसे मोटे अक्षरों में छपवा कर यह दिखलाने का विचार था कि जैसे उपनिषद वाक्यों को हटा लेने से गीता का कुछ नहीं बचता वैसे ही वेद मंत्रों की प्रतीके अलग करने से उपनिषद समझ में नहीं आ सकती ।

कहां तक लिखा जाये, सच्चे ब्राह्मण का यह लक्षण पंडित लेखराम में कूट-कूट कर भरा हुआ था । दूसरा लक्षण ब्राह्मण का यह है कि जिस धर्म का निर्णय स्वयं किया हो उसको संसार में निष्कपट होकर फैलावे ।

## आदर्श धर्म प्रचारक थे

इसीलिए आर्य पथिक की मौखिक प्रचार में धूम मची हुई थी। आर्य समाज में उन धर्म प्रचारकों की संख्या अंगुलियों पर गिनी जा सकती है जो लेखराम के समीप इस अंश में पहुंच सकें। गृहस्थी होते हुए भी संन्यास की तितिक्षा तथा धारणा हम उनके आचरण में देखते हैं। विरोधी लोग प्रसिद्ध करते हैं कि पंडित लेखराम बदजबान था। यद्यपि वह खण्डन सर्वमतों का एक सा करते थे, परन्तु हिन्दुओं, जैनियों, सिक्खों ने उनकी कभी शिकायत नहीं की। इसका कारण तो यह हो सकता है कि इन मतों के संशोधन के लिए इन मतावलम्बियों को हिलाते थे तथापि आर्य जाति विरोधियों के आक्रमणों से इनको भी बचाने का ठेका लेखराम ने ही ले रक्खा था। एक बार मैं और पंडित लेखराम इकट्ठे दिल्ली से लौट रहे थे कि मार्ग में सनातन धर्म सभा के पंडित दीनदयाल जी मिल गये। बातचीत आरम्भ होने पर पंडित लेखराम ने कहा - "आप हमें कोसने के लिए बड़े बहादुर हो लेकिन इसलाम आपके धर्म की जड़ें खोद रहा है और आप चुप बैठे हो।' पंडित दीनदयाल जी ने उत्तर दिया - 'यह काम तो हम सबने आपके सुपुर्द कर छोड़ा है, जब तक आर्य मुसाफिर जीवित है तब तक हमारे धर्म की जड़ कौन खोद सकता है।'

यह तो ठीक है कि हिन्दू, जैन, सिक्खादि तो उन्हें अपना समझकर उनके कटु वचनों को सहन कर लेते थे, परन्तु यदि वह कटु भाषी होते तो मुसलमान जनता भी क्यों उनके व्याख्यानों पर मोहित होती। असल बात यह थी कि महम्मदी मौलवियों ने उनके पते की कहने और लिखने पर, उत्तर देने की शक्ति न रखते हुए, उन्हें 'बदजबान' प्रसिद्ध कर रक्खा था। परन्तु जब ऐसी बहकाई हुई मुसलमान जनता लेखराम से प्रत्यक्ष परिचय करती तो उस पर आर्य पथिक का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता।

जहां दूसरे वक्ताओं के एक घंटे के व्याख्यान के पश्चात् श्रोता घबरा जाते हैं वहां तीन घंटों तक आर्य पथिक की वक्तृता सुनने के पश्चात् भी फिर एक घंटे बैठने को तैयार रहते थे। इसका कारण उनका विस्तृत ऐतिहासिक ज्ञान तो था ही परन्तु उनकी वाणी में हास्य रस और हाजिर जवाबी ऐसी मनोहर थी कि सुनने वाला उकता नहीं सकता था।

## हाजिर जवाबी में कमाल

जो पुरुष किसी बड़े काम में कृतकार्य होना चाहें उनके लिए 'हाजिर जवाबी' एक अपूर्व सम्मिलित अस्त्र-शस्त्र है। जिस बात को दलील से काटने में घंटों का नाश हो उस बात का 'हाजिर जवाबी' मिनटों में सफाया बोल देती है।

लेखराम बचपन से हाजिर जवाबी के लिए प्रसिद्ध थे। मदरसे में पहले साल ही परीक्षक इनकी हाजिर जवाबी से प्रसन्न हुए थे। इनके पहले उस्ताद

तुलसीराम जी इसी हाजिर जवाबी से तंग थे, जिसके कारण इनकी अकल की शिकायत किया करते । इस कहानी में भी कई स्थानों पर मैंने उनकी हाजिर जवाबी के नमूने दिये हैं । परन्तु उनकी हाजर जवाबी को पढ़कर ऐसा आनन्द आता है और हमारे चरित्र नायक के इतने गुणों का पता लगता है कि उनमें से कुछ और का उल्लेख करना मनोरंजक ही न होगा प्रत्युत शिक्षा दायक भी सिद्ध होगा ।

हरद्वार में संवत् १९४८ के कुम्भ पर स्वामी आत्मानन्द जी ने संयुक्त प्राप्त के छूतछात वाले उपदेशकों को चौका स्थिर रखने के लिए यह प्रबंध किया कि पंजाबियों से पहले वह चौका में भोजन लिया करें । पंडित लेखराम उनसे भी पहले भोजन के लिए जा बैठे । अब पंजाबियों का अपवित्र किया हुआ चौका फिर से लगाया गया । दूसरे दिन भी पंडित लेखराम पाचक (रसोइए) के साथ वाली क्यारी में जा बैठे, परन्तु जब रोटी को बिना अधिक सेके उसने चूल्हे में खींचा तो आपने उसकी पीठ पर हाथ ठोंका और उसके हाथ से चिमटा लेकर उसे रोटी सेंकना बताने लगे । अब तो संयुक्त प्रान्तीय दल में खलबली मच गई, परन्तु कुछ संयुक्त प्रान्ती उसी समय आर्य पथिक के चेले बन गये और सखरी निखरी के भेद-भाव को उड़ा दिया ।

दिल्ली के जलसे पर एक आदमी केशर का चन्दन सब भाइयों के माथे पर लगाता आता था । जब आर्य पथिक के समीप आया तो उन्होंने डांट कर कहा 'मेरे सिर में दर्द नहीं है ।' उत्तर मिला - 'महाराज ! सुगंधि के लिए लगाते हैं ।' आर्य पथिक ने दाहिने हाथ का पृष्ठ भाग सामने करके कहा - 'तो यहां लगाओ' और जब वहां चन्दन लगाया गया तो नाक के पास ले जाकर सूंघने लगे, जिस पर सब उपस्थित सज्जन मुसकिरा दिये ।

एक आर्य सज्जन ने भोजन के पश्चात् सब आर्य भाइयों को ताम्बूल (पान) बांटे । जब आर्य पथिक के सामने पानदान पेश किया तो बोले - 'देखते नहीं हां मैं मनुष्य हूं, बकरा नहीं हूं कि पत्ते खाऊं ।' गुजरात आर्य समाज में आर्य पथिक का व्याख्यान हो रहा था । मुसलमानों के 'हराम, हलाल' के मसले पर बोल रहे थे । समाप्ति पर प्रश्नोत्तर का समय दिया गया । दो मौलवियों को तो यों ही झिझोड़ दिया परन्तु अन्त में मौलवी बाकरहुसैन उठे जिनकी ऋषि दयानन्द के साथ भी पुनर्जन्म पर बातचीत हो चुकी थी । मौलवी साहेब ने कहा- 'पंडित साहेब ?' आपने जो हमारे हराम हलाल के मसले पर एतराज (आक्षेप) किये है, क्या आपने यह भी सोचा है कि हमारे मजहब में चुहिया हराम है । क्या वह भी इसीलिए हराम करार दी गई कि जबरदस्त थी ? आर्य पथिक ने पूछा कि मौलवी साहेब सुन्नी हैं या शिया । यह उत्तर पाने पर कि मौलवी साहेब शिया हैं पंडित लेखराम ने उत्तर दिया - 'मौलवी साहब ! मुझे आपका कथन सुनकर हंसी आती है । आप शिया होकर चूहे की बुजुर्गी और जबरदस्ती से

इनकार करते है । यही नामुराद चूहा था जिसने मैदान कर्बला में सब पानी की मशकें काट दीं, और बेचारे इमाम हुसैन को प्यासा मरवाया । अगर ऐसे दो तीन और जबरदस्त पैदा हो जायें तो अरब और ईरान में कई कर्बला की सी घटनाएं हो जायें ।' श्रोतागण खिलखिला कर हंस पड़े और मौलवी साहेब चुप हो गये ।

## लेखनी का प्रवाह

धर्म वीर आर्य पथिक ने अपने नाम को सार्थक करने के लिए विचित्र लेखनी चलाई । लेखराम सचमुच लेख की लहर चला देता था । संवत् १९४१ में लेखराम ने दासत्व से मुक्ति लाभ की । संवत् १९५३ के अन्त में उनका देहान्त हुआ । १२ वर्षों में उन्होंने जहां लाखों नर-नारी तक वैदिक धर्म का सन्देश पहुंचाया, और सैकड़ों छोटे-बड़े लेख लिखकर आर्य गजट फिरोजपुर, सद्धर्म प्रचारक तथा अन्य समाचार पत्रों में छपवायें, सैकड़ों शास्त्रार्थ किये और सहस्रों को धर्म से पतित होते-होते बचाया, वहां ३३ छोटी बड़ी पुस्तकें तैयार की जिनके छपे हुए सत्यार्थ प्रकाश के परिमाण के, पृष्ठ २९०० से कम न होंगे और इसके साथ ही ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र के लिए न केवल ८७९ बड़े पृष्ठों के लिए लेख तैयार करके ही छोड़ गये, प्रत्युत पुस्तक की पूर्ति के लिए भी इतने नोटों का कोष जमाकर दिया कि उन सबसे पूरा नाम लेना भी कठिन हो गया ।

'एक विशेष कापी मिली है, जिसका शीर्षक है -'आर्य समाज की बीस साला रिपोर्ट ।' इसके अन्दर १४ बड़े-बड़े विषयों की सूची है, जिससे ज्ञात होता है कि जो कार्य 'आर्य डाइरेक्टरी' का आज कुछ कुछहोने लगा है उसको आर्य पथिक वर्षों पहले पूर्ण रीति से करने का विचार कर रहे थे ।

भविष्य पुराण की पड़ताल मैंने उन्हीं की प्रेरणा पर आरम्भ की थी और विचार यह था कि हम दोनों १८ पुराणों तथा १८ ही उपपुराणों की पड़ताल का परिणाम जनसाधारण के आगे रक्खेंगे । ऋषि जीवन का चरित्र छपवाने के पश्चात् उनका विचार अरब आदि देशों में प्रचार के लिए जाने का था । इसके लिए उन्होंने आर्य समाज के दस नियमों का भाष्य अरबी में लिख लिया था जो मेरे पास मौजूद है और १६ लघु पुस्तकों की सूची भी बना ली थी जिन्हें अरबी में छपवा कर वह साथ ले जाना चाहते थे । यह लेखनी का प्रवाह बड़ा ही प्रबल है । परन्तु कहा यह जाता है कि धर्म वीर पंडित लेखराम की 'तहरीर सख्त' बलवती थी तो मुझे भी मानने में कोई संकोच नहीं, क्योंकि जिस लेख का आधार सच्चाई पर हो और जो केवल अपने मन्तव्यों की रक्षार्थ लिखे गये हों उनका शक्तिशाली होना आवश्यक ही है । परन्तु यदि आक्षेपकों की यह प्रतिज्ञा है कि पंडित लेखराम की लेख शैली मुहम्मदी तथा अन्य आर्य समाज

के आक्षेपों की न्याईं अश्लील और असभ्य होती थी तो कहने में कोई संकोच नहीं कि ऐसी प्रतिज्ञा निर्मूल और झूठी है। मेरी तो यहां तक प्रतिज्ञा है कि लेखराम अपने लेखों में कभी मर्यादा का भी उलंघन नहीं करते थे, तभी तो जब-जब न्यायालयों में उनकी पुस्तकें पेश हुई तब-तब ही उनके विरोधियों को पराजित होना पड़ा। महम्मदी मौलवियों को उन्होंने युक्ति तथा सत्यान्दोलन से ऐसा परास्त कर दिया था कि उन्होंने अमली तौर पर अपनी हार मान ली और जिस लेखनी को उनकी सम्मिलित शक्ति जवाबी लेखों तथा न्यायालयों की सहायता से भी बन्द न करा सकी उसे कायर छुरी के द्वारा बन्द करा दिया।

●

# महम्मदियों के आक्रमण

(१) सबसे पहले १८८७ ई० में अमृतसर में 'तकजीब' और 'नुसखा' के छपने पर मुसलमानों ने बड़ी हलचल मचाई परन्तु वकीलों ने नालिश की सम्मति न दी।

(१) सबसे पहला वास्तविक आक्रमण मिर्जापुर के मुसलमानों ने किया। शुक्रुल्ला नामी व्यक्ति की ओर से 'तकजीब बुराहीन अहमदिया' तथा 'नुसखा खब्त अहमदिया' को मुसलमानों का दिल दुखाने वाली किताबें करार देकर मजिस्ट्रेट जिला के यहां अर्जी दी। यह अभियोग बिना पंडित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया।

(३) प्रयाग में ऐसी नालिश हुई तो बिना अभियुक्त पुरुषों को बुलाये खारिज हुई।

(४) फिर लाहौर के मुसलमानों ने सं० १८९३ ई० के आरम्भ में 'जिहाद' तथा अन्य पुस्तकों को लेकर, जो अरोड़ वंश प्रेस में छपी थीं और उनमें अश्लील लेख बतलाकर नालिश की। इस मुकद्दमे में लाला लाजपराय जी ने बड़ी पैरवी की और मुकद्दमा खारिज हुआ।

(५) फिर मेरठ के मौलवियों ने भी बड़े जलसे किये और महम्मदी जगत् को भड़काया, परन्तु वहां भी नालिश करने की सम्मति वकीलों ने न दी।

(६) दिल्ली में नालिश की गई। यह नालिश २८ अगर्त १८९६ को कप्तान डेविस साहब डिपुटी कमिश्नर देहली की अदालत में पेश हुई। डेविस साहेब ने वे सब पुस्तकें मंगा कर सुनीं जिनके उत्तर में पंडित लेखराम ने पुस्तकें लिखी थीं और बिना ग्रंथकर्ता तथा छापने वाले को बुलाये नालिश खारिज कर दी।

तब मुसलमानों के बड़े पुर-जोर जलसे हुए, बहुत सा धन एकत्र हुआ और कप्तान डेविस साहेब के हुकुम की निगरानी की गई। वह निगरानी फिर १० सितम्बर १८९६ को खारिज हुई। इस अन्तिम फैसले में साहब मजिस्ट्रेट ने लिखा - 'यह मुकद्दमा मजहबी बुनियाद पर उठाया गया है। सारे शहर में जलसे किये गये और सब प्रान्तों से मुसलमान बुलाये गये हैं जिससे आज न्यायालय में जमा होकर अपनी सहानुभूति प्रकट करें .....

'इस स्थान में यह बतलाना आवश्यक है कि पंडित लेखराम आर्य अग्रणियों में से एक है ...अब इस प्रश्न के विषय में कि क्या यह पुस्तक अश्लील है या नहीं, मैंने वे सब विशेष-विशेष वाक्य अवलोकन किये जिन्हें अश्लील बताया जाता है। यह बात विचारणीय है कि इनमें बहुत अधिक तो ऐसे वाक्य हैं जो कि अश्लील कहे ही नहीं जा सकते। दूसरों में प्रश्न यह है कि शब्दों का किस प्रकार के प्रयोग हुआ है...मेरी सम्मति में पुस्तक के शब्द इन अश्लील या असभ्य) अर्थों में नहीं किये जा सकते...मैं निश्चय करता हूं कि कोई भी जुर्म (अपराध) लेखराम...के विरुद्ध प्रकट नहीं किया और इसलिए अभियोग को 'जाबिता फौजदारी' की धारा २०३ के अनुसार खारिज करता हूं।'

(७) दिल्ली से निराश होकर मुसलमानों ने बम्बई में बड़ी हलचल मचाई और दिसम्बर १८९६ में वहां नया अभियोग चलाया। जब वह अभियोग भी बिना पंडित लेखराम को बुलाये खारिज हो गया तब -

(८) पेशावर में धर्मवीर लेखराम रुपी ज्वलंत शक्ति को जो इस अदूरदर्शी दृष्टियों में इसलाम की जड़ों को खोखला कर रही थी, सदा के लिए शान्त करने का यत्न सोचा गया। पेशावर में दिल्ली का मुकदमा खारिज होते ही आग भड़की थी। यद्यपि पहले नालिश का ही विचार था, परन्तु जब बम्बई के अभियोग की भी समाप्ति का समाचार आया तो फिर पेशावर, बम्बई, अमृतसर, पटना इत्यादि सब नगरों से यह समाचार आने लगे कि मुसलमान पंडित लेखराम को मरवा देने के मंसूबे बांध रहे हैं।

आर्य भाईयों ने विविध स्थानों से सचेत करने के लिए लाहौर आर्य समाज को पत्र भेजे परन्तु, लेखराम की रक्षा कौन कर सकता था। धर्म वीर ने डर का शब्द ही अपने कोष से निकाल छोड़ा था, वे मनुष्यों की धमकियों की क्या परवा करते थे ?

o

# धर्म पर बलिदान

फरवरी, १८९६ के मध्य भाग में एक काला, गंठे हुए बदन का भयानक, नाटा युवक दयानन्द कालिज में पंडित लेखराम को पूछता गया, वहां से पता लेकर वह पंडित लेखराम के निवास स्थान पर पहुंचा और पंडित जी से निवेदन किया कि वह असल में हिन्दू था, दो वर्षों से मुसलमान हो गया है और अब शुद्धि के लिए आर्य पथिक की शरण में आ गया है । पंडित लेखराम ने प्रतिज्ञा की कि वह उस पतित को शुद्ध कर लेंगे ।

पंडित लेखराम को कई स्थानों के आर्य भाई सचेत कर चुके थे कि महम्मदी लोग उनको मरवा डालने की फिक्र में लगे हुए हैं, परन्तु ऐसी चेतावनियों का पंडित लेखराम पर उलटा असर हुआ करता था, उन्होंने इस अनजाने व्यक्ति के विषय में पता भी न लगाया कि वह कौन और कहां से आया है, और न उससे ही कुछ पूछा । कुछ आर्य भाइयों ने पता लगाना चाहा जिनसे उसने आपको बङ्गाली बतलाया, परन्तु प्रत्येक ८ शब्दों में से केवल दो बंगाली शब्द समझ सकता था । जिसने उसकी शकल देखी, बिना सोचे कह दिया कि वह बूचड़ है । अनुमान होता था कि वह पटना प्रान्त का रहने वाला है ।

यह पटनवी बूचड़ छायावत् पंडित लेखराम के साथ फिरता रहा । दो तीन बार पंडित जी के घर में रोटी खाता भी देखा गया । दिन को वह पंडित जी के साथ रहता था, परन्तु किसी को पता न था कि रात कहां काटता है । धर्मवीर के बलिदान के पश्चात् पुलिस के आन्दोलन के समय पता लगा था कि रात को उस स्थान में सोता था जहां कि लेखराम के वध के मंसूबे गांठे जाते थे ।

१ मार्च को पंडित लेखराम सभा की आज्ञानुसार मुलतान पहुंचे जहां ४ मार्च तक ४ व्याख्यान दिये । सभा ने सक्खर जाने के लिए तार भेजा परन्तु प्लेग के कारण मुलतान समाज के सभासदों ने वहां जाने से रोक लिया, उनको क्या मालूम था कि वे संदिग्ध कष्ट से बचाकर अपने वीर धर्मोपदेशक को सीधा मौत के मुंह में भेज रहे है । फिर पंडित लेखराम मुजफ्फरगढ़ के लिए तैयार हुए, परन्तु न जाने क्यों सीधे लाहौर को लौट पड़े जहां वहां ६ मार्च को दोपहर को पहुंच गये ।

४ मार्च को ईद का दिन था । इससे बढ़कर, महम्मदी मत की जड़ खोखली करने वाले को, वध करने का श्रेष्ठ दिन कब मिल सकता था । उस दिन बूचड़ घातक ने आर्य पथिक के निवास स्थान, आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्यालय तथा रेलवे स्टेशन पर १८ या १९ चक्कर काटे । ६ मार्च के प्रातः फिर पंडित जी के घर पहुंचा, वह अभी लौटे न थे, फिर सभा के कार्यालय में गया परन्तु वहां से भी निराश लौटा ।

२ बजे पंडित लेखराम के साथ सभा के कार्यालय में फिर पहुंचा गली की ओर मुंह करके खिड़की में बैठ गया । वह उस दिन थूकता बहुत था । सभा के मुनीम ने कहा - 'पंडित जी ! यह स्थान खराब करता है ।' भोले आर्य पथिक बोले - 'भाई ! बैठा रहने दो, तुम्हारा क्या लेता है ।'

उस दिन नियम विरुद्ध सारा शरीर कम्बल से ढके हुए था । सभा से चलते समय कांपा । पंडित जी ने पूछा कि ज्वर तो नहीं है । धीरे से बोला - 'हां और कुछ दर्द भी है ।' पंडित लेखराम उसको इलाज के लिए डाक्टर विष्णुदास के पास ले गये । नाड़ी देखकर डाक्टर ने कहा- 'बुखार बुखार तो मालूम नहीं होता, इसका खून जोश में है और थकान मालूम होती है, यदि दर्द है तो ब्लिस्टर लगा दिया जावे ।' घातक ने कहा कि लगाने की नहीं, कोई पीने की दवा दीजिए । यदि उस समय कम्बल उतार, उसके दवाई लगवाने का विचार होता तो कमर में लगी छुरी पकड़ी जाती । परन्तु आर्य पथिक तो स्वयं बलिदानी की तैयारी कर रहे थे, सिफारिश की कि पीने की दवाई ही दी जावे । डाक्टर ने कहा कोई शरबत पी लेवे । न जाने कहां से शरबत पिलवा कर बजार की दूकान पर गये और इसी घातक के हाथ थाम माता जी को दिखाने भेजा बजाज ने घातक के चले जाने पर कहा - 'पंडित जी ? क्या भनायक आदमी साथ लिए फिरते हो ।' धर्मवीर, शुद्धि की धुन में मस्त, उत्तर देते हैं- 'भाई । ऐसा मत कहो, यह धर्मात्मा आदमी है, शुद्ध होने आया है ।' घर जाकर पंडित जी जिस खुले बरामदे में काम करते थे वहां चारपाई पर बैठकर जीवन चरित्र संबंधी काम करने लगे । उनकी बाईं ओर कुर्सी पर घातक बैठ गया । ६ बजे लाला जीवनदास और लाला केदारनाथ जी आये और रविवार के लिए व्याख्यान की प्रतिज्ञा करा के चले गये । घातक बैठा रहा । माता जी रसोई में थीं, धर्म पत्नी जी दूसरे कमरे में अलग पढ़ रही थीं । तब पंडित लेखराम ने घातक को कहा - 'अब देर हो गई है, भाई ! तुम भी आराम करो ।' घातक न हिला । दस मिनटों के पीछे माता जी ने चौके से कहा - 'पुत्र लेखराम, तेल नहीं आया ।' पंडित लेखराम उस समय ऋषि दयानन्द की मृत्यु का अन्तिम दृश्य खींच रहे थे, पत्र वहीं रख दिये और चारपाई पर से उस ओर उतर कर जिधर घातक बैठा था, अपने अभ्यासानुसार आंखें बंद कर

और दोनों बाहें ऊपर उठा कर जोर से अङ्गड़ाई लेते हुए कहा - 'ओफ् फोह ! भूल गया।'

इस समय आर्य पथिक ऐसे सीना तान के खड़े हुए कि जिस समय की घात में दुष्ट घातक प्रतीक्षा कर रहा था, वह आन पहुंचा। एक दम से अभ्यस्त हाथ ने छुरी पेट के अन्दर सेड़ेधां कर इस प्रकार घुसा दी कि आठ, दस घाव अन्दर आये और अतड़ियां बाहर निकल पड़ी।

परन्तु क्या आर्य पथिक इस निष्ठुर, पिशाच के आक्रमण से विवश हो कर गिर पड़े और अपनी चिल्लाहट से मुहल्ले को जगा दिया ? वहां न कोई हृदय वेधक आर्तनाद ही सुनाई दिया और न कोई चिल्लाहट की आवाज माता और धर्मपत्नी ने सुनी। यदि धर्मवीर में यह निर्बलता होती तो लोग दौड़ पड़ते और घातक उसी समय पकड़ा जाता। परन्तु वहां पतितों पर दया का भाव अभी तक स्थिर था जिसने घातक को स्पष्ट बचा दिया।

अन्तड़ियों का बाहर निकालना था कि बायें हाथ से बाहर निकली हुई अन्तड़ियों को सम्भाल दाहिने हाथ को घातक के हाथ पर डाल दिया। साधारण पुरुष अपने रक्त के दर्शन मात्र से होश गंवा बैठता है, परन्तु वीर लेखराम सिंह पुरुष था। बांह के अन्दर चाहे रक्त की नदी बह जाये उसकी सावधानता में मद नहीं आता। पहली झपट में लड़ते-भिड़ते सीढ़ी के पास जा पहुंचे और घातक के हाथ से छुरी छीन ली। घातक के दो हाथ और धर्मवीर का केवल एक, और फिर रक्त की धारा बह रही, सम्भव था कि घातक फिर छुरी छीन ले कि लक्ष्मी देवी ने, झूठी लोक लज्जा को परे फेंक कर, हाथ जा मारा और छुरी धर्मवीर के हाथ में रह गई। लक्ष्मी देवी ने इस डर से कि कहीं अब तक फिर आक्रमण न करे धर्मवीर को रसोई की ओर खींचा परन्तु घातक के दुष्ट हृदय को इस पर भी सन्तोष न हुआ और वह खूनी आंखों से डराता हुआ फिर पीछे दौड़ने लगा। फिर माता जी ने दोनों हाथों से उसे पकड़ लिया। इस समय घातक भी हांपने लग गया था और उसने पास पड़ा एक बेलन झपट कर उठा माता जी के दो तीन चोटें लगाईं। वह अचेत होकर भूमि पर गिर पड़ी और घातक सीढ़ियों से नीचे न जाने कहां लुप्त हो गया।

कुछ पलों के पश्चात् लाला जीवनदास जी बाहर से लौटे तो बड़ा हृदय विदारक दृश्य देखा। चारपाई पर धर्मवीर सिंह लेटे हुए हैं, अन्तड़ियां एक हाथ से दबाये हुए हैं और रक्त का स्रोत बह रहा है। वृद्ध जीवनदास जी घबरा गये। फिर और लोग आ गये। परन्तु आर्य सिंह के मुख पर कोई मलिनता न थी, पूछने पर उसी सरल वीरता पूर्ण वाणी से उत्तर दिया - 'वही दुष्ट, जो शुद्ध होने आया था, मार गया तो फिर बोले - 'डाक्टर को बुलाओ, शीघ्र बुलाओ।' चारों ओर समाचार फैल गया, डाक्टर तथा डाक्टरी के

विद्यार्थी जमा हो गये । चारपाई पर धर्मवीर को लिटा कर हस्पताल की ओर ले चले । मै उस दिन अकस्मात ४ बजे शाम की गाड़ी से लाहौर पहुंचा था, समाचार पाते ही धर्मवीर के निवास स्थान की ओर चल दिया । आगे गली के मुहाने पर 'शहीद सवारी' आती हुई मिली और मैं कलेजा थाम साथ हो लिया ।

हस्पताल पहुंचते ही आर्यवीर को मेज पर लिटाया गया । दुःखित मन को सम्भालकर मै आगे बढ़ा । उस समय अन्तड़ियां हाउस-सर्जन के हाथ में थी । मुझे देखते ही दोनों हाथ, जो सिर के नीचे थे, उठा लिए और हाथ जोड़े । मेरी अश्रुधारा निकलने को ही थी कि प्यारे लेखराम ने अपनी साधारण वीर वाणी से कहा - 'नमस्ते लालाजी, आप भी आ गये । इस साधारण दृश्य ने मेरा दिल दहला दिया । अन्तड़ियों की ओर देखकर विश्वास नहीं आता था कि मै अपने प्यारे मित्र लेखराम से बात कर रहा हूं । ऐसी प्रतीक होता था कि मानों शिमले के वार्षिकोत्सव से लौटकर मुझे नमस्ते कर रहे हैं फिर बोले - 'लाला जी बेअदबियां माफ करना' मैंने बलपूर्वक रोने-धोने को रोक कर कहा - 'पंडितव जी ! आप तो परमात्मा पर पक्का विश्वास रखने वाले है, प्रत्येक संकट में उसी का आश्रय ढूंढा करते हैं, उसका ध्यान कीजिए । वह वीर वाणी उत्तर देती है - 'अच्छा तो शायद मै अच्छा हो जाऊंगा, परन्तु लाला जी ! मेरे अपराध क्षमा करना ।' यह कहा और वेद मंत्र का पाठ करने लगे ।

'ओ३म् । विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रन्तन्न आसुव ।'

मरते दम तक इस मंत्र तथा गायत्री मंत्र का जप करते रहे । बीच-बीच में 'परमेश्वर तुम महान् हो, परम पिता इत्यादि' शब्द बोलते रहे ।

छुरी लगने से पौने दो घंटों के पश्चात् डाक्टर पेरी साहेब आये । फिर बराबर दो घंटों तक डाक्टर महोदय भी कटी हुई आंतो को सीते रहे । एक स्थान की आंत काटकर दो टुकड़े हो गई थी, आठ बड़े-बड़े घाव और बहुत से छोटे-छोटे घाव भी थे । डाक्टर पेरी हैरान थे कि दो घंटों तक जिसके अन्दर से रक्त खुला बहता रहा हो वह कैसे जीवित रह सकता है । इसलिए उन्होंने कहा कि साधारण अवस्था में तो ऐसे घाव लगने पर कोई मनुष्य बच नहीं सकता, परन्तु जिसकी अब तक यह चेतना शक्ति है वह शायद बच जावे । यदि यह समझा भी जाये तो Miracle (चमत्कार) ही समझना चाहिए ।

२॥ बजे रात तक बराबर सचेत थे । केवल परमेश्वर के नाम का जप था, न घर वालो की चिन्ता और न घातक पर अप्रसन्नता और न मौत का डर । यदि चिन्ता थी तो आर्य समाज की ओर यदि ध्यान था तो उस महायज्ञ की ओर जो ऋषि दयानन्द रच गये थे । धर्मवीर ने न तो माता और धर्मपत्नी की चिन्ता की क्योंकि उनको विश्वास था कि परमेश्वर उनका सहायक है और नहीं घातक

का पता लगाने को कहा क्योंकि जिस वैदिक धर्म के वह सच्चे सेवक थे वह बदला लेने की शिक्षा नहीं देता । अन्तिम आदेश अपने सहधर्मियों को यह दिया कि -

'आर्य समाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिए ।'

दो बजे के करीब लेखराम का तौर बदल गया । दो बार जोर से हाथ हिलाये और ५ मिनटों में हाथ सीधे करके सदा की नींद सो गये ।

पौ फटते ही धर्मवीर की मौत का समाचार विद्युतवत् सारे लाहौर नगर में फैल गया । क्या हिन्दू, क्या जैनी, क्या ब्राह्मण, क्या सिक्ख सब दुःखी प्रतीत होते थे । अपने प्यारे से प्यारे बच्चे की मौत पर इतना कष्ट न हुआ होगा जो इस समय आर्य सन्तान मात्र को लेखराम को वध का समाचार सुनकर हुआ । सबने छोटे-छोटे विरोधों को भुला दिया । दस बजे के अनुमान धर्मवीर के मृतक शरीर वाले कमरे के सामने का मैदान आर्य सन्तान से भर गया । वे लोग, जिन्होंने आर्य मन्दिर में कभी पैर भी नहीं रखा था, इस जन-समूह में दिखलाई देने लगे । सिविल सर्जन ने बड़ी सहानुभूति की दृष्टि से किसी मुसलमान को मृतक शरीर के पास फटकने न दिया और दस मिनट में दो घंटों का काम करके लेखक का जो कुछ बचा था हम लोगों के हवाले करके चल दिये ।

अन्दर जाकर देखा तो आर्य पथिक को सदा का यात्री पाया, परन्तु फिर भी स्थिर बिछोड़े का निश्चय न हुआ । आंख मुंदी हुई परन्तु मुख में कोई परिवर्तन नहीं, मानो लेटे हुए सन्ध्या कर रहे हैं । वही हृष्ट-पुष्ट शरीर, वही विशाल छाती कुछ भी भेद न था । अश्रुधारा बहाते हुए सब भाइयों ने प्रेम पूर्वक वस्त्र पहनाये । बाहर अर्थी लाते ही सारा शरीर श्वेत पुष्पावली से ढांपा गया । कैमरा (Camera) तैयार था, मुंह खोलकर अन्तिम चित्र लिया गया । इस समय दो सहस्र पुरुष अन्तिम दर्शन के लिए खड़े थे ।

अर्थी उठाई गई और शहीद की सवारी सीधी अनारकली में पहुंची । थोड़ी ही देर में २० सहस्र का तांता साथ था । यहां माता भी आ पहुंची जिसका विलाप सुनकर २० सहस्र आंखों से नदिया बहने लगीं । एक युवक अचेत होकर गिर पड़ा ।

अर्थी ने शहर में प्रवेश किया । प्रत्येक स्थान में आर्य जाति की देवियों के नीचे छतें फटी पड़ती थीं । प्रत्येक देवी को ऐसा दुःख था जैसा उनका कोई प्यारा बच्चा सदा के लिए जुदा हो गया हो । वे लोग जो कभी अपनी दूकान से हिलकर किसी सभा या सुसाइटी में नहीं गये गुलाब जल के कन्टर अर्थी पर बहा रहे थे । किसी-किसी स्थान पर तीस-तीस हजार की भीड़ हो जाती थी । फूल बेचने वालों ने मुंह मांगे दाम लिए, भूमि पुष्प वर्षा से रंगी पड़ी थी । अन्त

की सवारी नगर से बाहर निकली और वेद मंत्रों का उच्चारण करते तथा वैराग्य के भजन गाते सात सहस्र से अधिक भाई श्मशान भूमि तक पहुंचे। ज्ञात होता था कि चिरकाल से सोई हुई आर्य जाति जाग उठी है और धर्म पर सर्वस्व न्यौछावर करने वालों का सत्कार करना सीखने लगी है।

श्मशान में अर्थी को रक्खा गया और फिर अन्तिम दर्शन की अभिलाषा हुई। पढ़े-लिखे और अनपढ़, राव और रङ्क सब ने दर्शन किये। एक भक्ति-रस से भरा भजन गाया गया और उपस्थित सज्जनों की शान्ति के लिए ईश्वर प्रार्थना हुई। मृतक शरीर का वेद मंत्रों की आहुतियों से दाह किया गया और जब वह बहुमूल्य शरीर केवल एक भस्म ढेरी रह गया तो सब भाई घरों को लौटे।

उस समय आर्य धर्म रूपी देवी का आर्तनाद स्पष्ट सुनाई देता था -

'हा ! वीर लेखराम, पुत्र ! क्या तुम सदा के लिए मेरी सेवा से जुदे होते हो ?'

इस प्रश्न का उत्तर मेरे अन्दर से निकला। मैंने श्रद्धापूर्वक मन ही मन में उत्तर दिया - 'देवी ! धर्म वीर के रक्त के एक-एक बिन्दु से एक-एक वीर उत्पन्न होगा और वे सब तुम्हारी सेवा करेंगे।' और सचमुच उन रक्त बिन्दुओं ने वीर प्रचारक उत्पन्न किये और सोमनाथ, बजीरचन्द, मथुरादास, तुलसीराम, योगेन्द्रपाल, जगतसिंहादि ने ओ३म् का झंडा उठाये हुए प्राण दिये और अन्य भी बीसियों वीर, काम कर रहे है, परन्तु आज पौने अठारह वर्षों के पश्चात् भी देवी का वही आर्तविलाप सुनाई देता है -

'हा, पुत्र लेखराम ! वीर ! क्या सदा की यात्रा में ही चले गये ? फिर दर्शन न दोगे ?'

क्या देवी की पवित्र पुकार बहरे कानों पर ही पड़ती रहेगी और ब्राह्मण धर्म का पालन एक स्वप्न ही बना रहेगा।